UNIVERSAL
LIBRARY
OU_180814
UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—731—28-4-81—10,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 Accession No. G714

Author S53D. 2081
यादवेन्द्रनाथ शर्मा "चन्द्र"

Title दिया जला! दिया बुझा!

This book should be returned on or before the date last marked below

दीया जला ! दीया बुझा !!

(मौलिक उपन्यास)

लेखक :

यादवेन्द्रनाथ शर्मा 'चन्द्र'

● प्रकाशक :
रामपुरिया प्रकाशन,
३ उडबर्न रोड,
कलकत्ता–२०

● प्रकाशकीय-सम्पादक:
यादवेन्द्रनाथ शर्मा 'चन्द्र'
● प्रकाशकीय-व्यवस्थापक :
ललित कुमार शर्मा 'ललित'

● आवरण मुद्रक :
वर्मन एण्ड कम्पनी,
२४, ब्रेबोर्न रोड,
कलकत्ता ।
● पृष्ठ संख्या १९२
● प्रथम संस्करण १०००, जनवरी, १९५५ ई०
● मूल्य साढ़े तीन रुपया
● सर्वाधिकार लेखक द्वारा सुरक्षित ।

● मुद्रक :
एच० सी० अग्रवाल,
विश्वमित्र प्रेस,
७४, धर्म तल्ला स्ट्रीट,
कलकत्ता–१३

दीया जला ! दीया बुझा !!

मैं इतना ही कहूंगा—

'दीया जला ! दीया बुझा !!' की पृष्ठ भूमि सामन्तवाद के जर्जरित होते हुए जीवन की विभिन्न गतिविधियों पर आधारित है। जिसको वास्तविक रूप में रखने का मैंने भरपूर प्रयास किया है। इस उपन्यास का सम्बंध राजस्थान के वातावरण से है, अतः सभी प्रकार से उस वातावरण को सजीव बनाने का मैंने प्रयास किया है– कहने के ढंग में, रहन-सहन के ढंग में, और शब्दों के प्रयोग में भी।

घटनायें सब सत्य हैं, इसलिए उन्हें तथ्य के साथ प्रस्तुत किया गया है पर व्यक्तिगत आक्षेप करना मेरा अपना ध्येय नहीं है; क्योंकि साहित्य में व्यक्ति का अस्तित्व शून्य सा ही है। श्रद्धेय पुरुषोत्तम जी जोशी एवं ये दोनों जिन्होंने इस उपन्यास की कथावस्तु को एकत्रित करने में मुझे अपना अमूल्य सहयोग दिया है, साहित्य प्रेमी और कवि श्री दाऊदयाल जोशी तथा अनुज नारायण प्रकाश झाड़ू का मैं हृदय से आभारी हूँ।

आशा है, पाठक इसे पढ़ने के पश्चात अपनी अमूल्य सम्मति मुझे भेजेंगे।

२०।२ शोभाराम वैशाख स्ट्रीट
कलकत्ता।

समर्पण :

श्री जयचन्द लाल जी रामपुरिया को—

सादर सप्रेम !

—'चन्द्र'

गई हूं, मेरी तो आज हड्डी हड्डी टूट रही है। मुझे तो आज तू सोने ही दे।"

"सोने दूं ?" –खिलखिलाकर हँस पड़ी मैंना –"मैं तुम्हें सोने दूं ?... रधिया ! यदि मैं इतनी ही सीधी होती तो ये गांववाले छोरे० मुझे कभी ही खेतों की सैर करा देते।.....समझी ?"

"समझ गई, मेरी नानी समझ गई। तू बिना ले जाये मानेगी थोड़े ही ?"–रधिया खटिया से उठी। सामने लगी खूंटी पर से अपनी ओढ़नी को उठाकर· लापरवाही से अंगिया पर डाल करके वह द्वार की ओर अग्रसर हो गई।

"यह कहीं तू ने पते की बात ?" –मैंना ने रधिया की पीठ थपथपाई।

दोनों चल पड़ीं।

गांव की मटमैली संध्या !

धूल के कणों से मिश्रित वातावरण। गायों के रंभाने की अप्रिय आवाज। बकरियों की 'मेंSSS मेंSSS' की पतली वाणी। क्लान्त कृषकों की हँसी और चुप्पी। गृह में प्रवेश करते हुए कृषकों का अपने नंगधड़ंग, सयाल चढ़े, लंगोटी पहने बच्चों का चूमना, उन्हें गोदी में लेकर मुस्कान के साथ झूमना, जीवन में उल्लास का उद्भव कर रहा था।

माता-पिता विहीन कृषक जब अपने कंधे पर हल तथा हाथ में हँसिया लेकर गृह-द्वार पर आता और अपनी आटे से सने हाथों वाली, अर्ध घूंघटाच्छन्न मुखवाली पत्नी को अगवानी करती पाकर निहाल सा हो जाता था। पत्नी की प्रतीक्षा रत रतनारी आंखों में प्रियदर्शन की जो प्रसन्नता चमकती थी, उसे देखकर अन्नदाता का जीवन

०लड़के।

दिवस का कठोर श्रम विस्मृत कर नूतन प्रेरणा, नवीन उत्साह से प्रेरित हो उठता था ।

कदाचित् साँवरी अपने पति की प्रतीक्षा में द्वार पर खड़ी थी।

रधिया और मैना को द्रुतगति से जाते देखकर उसकी उत्सुकता जागी। साँवरी यह जानते हुए कि ये दोनों बड़ी मुंहफट हैं, बड़ा करारा उत्तर देती हैं, तो भी उससे बिना बोले न रहा गया । पूछ बैठी– "आज यह जुगल जोड़ी किधर जा रही है ?"

साँवरी के नैनों के भावों को मैंना ने तुरन्त ताड़ लिया और समझ गई उसके वाक्य के व्यंग को । तुनक कर बोली –"तेरे छैल छबीले खसम पर डोरे डालने, क्यों ?"

बात इतनी कड़वी थी कि साँवरी की मुखमुद्रा तुरन्त बदल गई। अपनी छोटी छोटी आंखों में क्रोध को मूर्त्त करके झल्लाई –"आपे० से बाहर क्यों हुई जा रही है ?...पूछ लिया तो कौन सा गढ़ ढह गया ? सीधे से भी तो उत्तर दे सकती थी !"

"तू सीधे से पूछे तो मैं भी उत्तर दूं । तेरे मन में तो पाप भरा हुआ है..... पाप ।"

"और तेरे मन में तो जैसे धर्म का सागर हिलोरें मार रहा है ?" –मुंह घुमाकर कहा साँवरी ने ।

"हाँ-हाँ ! मार रहा है, बहुत जोर से मार रहा है ।" –दंभ से गर्दन को हिलाकर कहा मैंना ने और रधिया का हाथ खींचा । एक बार उसने नैनों से नैना मिलाकर, इस बात का प्रदर्शन किया कि बताओ कैसी सुनाई साँवरी को, जवाब नहीं दे सकती और बोली– "चल न रधिया ! इसकी बक बक बन्द होने की नहीं, ऐसे ही टर्राती रहती है मेढक की तरह ।"

---

० दायरा ।

दोनों अकड़कर अस्वाभाविक गति में चलने लगी ।

साँवरी ने भी धड़ाम से दरवाजा बन्द कर लिया । उसके लोचनों में अंगारे जल रहे थे, अपमान की लपटें निकल रही थीं । कहने के लिए अधर फड़क रहे थे । आंगन में पड़े लोटे को जोर से ठोकर मारती हुई बड़बड़ा उठी –"आग लगे ऐसी ससुराल को, सब फटे ढोल की तरह चिल्लाते हैं, किसी से कुछ पूछ लिया तो काटने को दौड़ता है ।" –एक ठंडी दीर्घ निश्वांस छोड़कर वह पुनः अपने ललाट पर अपने हाथ का थप्पड़ मारती हुई बोली –"मेरे ही माइतों× की आंखें फूट गई थीं जो मुझे इस गांव में व्याहाया जहां के मिनख* पागल कुत्तों की तरह काटने दौड़ते हैं ।"

साँवरी रूठ कर इस भांति बैठ गई जैसे अब वह इस बात की अपेक्षा करती है कि उसके 'वे' आयें और जी हुजूरी करके उसे मनायें वर्ना वह आज राजी ही नहीं होगी ।

रधिया और मैना को इमरती की डोली पगडंडी पर ही मिल गई ।

ऊँटों पर बैठे बाराती अफीम के नशे में उन्मत्त बड़े भयावह लग रहे थे । उनकी लाल लाल आंखें वनराज की आंखों से भी हिंसु जान पड़ रही थीं ।

सबने स्वच्छ सफेद मोटी धोतियां घुटनों तक पहन रखी थीं । धोतियों पर बगलबन्दियां और सिर पर राठौड़ी साफें थे ।

बारात में जितने भी बुड्ढे थे उनके दाढ़ी और मूछें दोनों थीं । लेकिन तरुण वर्ग केवल राणा प्रताप सी बलदार मूंछों पर पल पल में ताव दे रहा था ।

कुछ निम्नवर्ग के बाराती पैदल ही चल रहे थे उस ऊंट के चतुर्दिक,

---

×मां-बाप, *मनुष्य ।

जो दूल्हे का था और काफी सज्जित भी। डोली भी कम सज्जित नहीं थी। उसके आस पास नूतन वस्त्र पहने ललनायें खड़ी थीं। ये ललनायें दुल्हिन को विदा करने आई थीं। शहद से मीठे स्वर में शान्त होते वातावरण की शून्यता को भंग करती हुई ये मार्मिक गीत गा रही थीं। गीत में विदाई की वह चिरन्तन मानव-भावना थी जो युगों से रेतीले शुष्क प्रान्तर में मन्दाकिनी की भांति जन जन के मन को अनवरत सिंचित करती हुई प्रवाहित हो रही थी। मन्दाकिनी की भांति इसलिये कि वह अपनी विकल व्यथा में अपरिमित आनन्द की अनुभूति सन्निहित किये हुए थी—वियोग में पुलकित मिलन। तड़प में वास्तविक भावों के मन्थन का प्रमन।

उस मिलन के सुख में उत्कंठित और गृह से बिछुड़ने के दुख में आंदोलित इमरती की डोली जा रही थी।

दिग्दिगान्त में गीत ध्वनित-प्रतिध्वनित हो रहा था—

"ओ जी गोरी रा लश्करिया
घड़ी एक लश्कर थामों जी ओ ढोला
पलक दोय लश्कर थामोजी ओ ढोला।"

पर लश्कर नहीं थमा। चलता ही गया। रेगिस्तान के उस दुरूह पथ को पार करता हुआ निरन्तर जहां वीरानगी के सिवाय कहीं कहीं पर बेर की झाड़ियां दिखलाई पड़ जाती थीं।

रधिया और मैंना भी एक दूसरे के कंधों पर हाथ रखे अपलक दृष्टि से उस लश्कर को देख रही थीं, जिस लश्कर में ठीक उन्हीं जैसी एक लड़की वस्त्रों में लिपटी रोती—कलपती अपने ससुराल जा रही थी।

जब लश्कर आंखों से ओझल हो गया तो रधिया ने मैंना की चुटकी ली—"इस भांति एक दिन तेरी भी डोली चली जायेगी!"

"और तू तो उपासरे चढ़ेगी।" —हठात मैंना ने अकाट्य उत्तर दिया। झेंप गई रधिया—"क्यों? ऐसी बात क्या है जो मैं उपासरे चढ़ूंगी?....

पर मेरी डोली जाने में अभी काफी अबेर है ?" –नाक भौं सिकोड़ कर रधिया ने बड़प्पन का प्रदर्शन किया ।

"अबेर कैसी ?" –भौहों को हिलाया मैंना ने –"जोबन तो तेरा भी जोर मार रहा है ? छाती तो तेरी भी उठ रही है ?"

"छि ! मुंहफट कहीं की ।"

"क्यों री, लगी कलेजे पर चोट ?"

"चोट क्या लगेगी, पर ऐसी बातें मुझसे नहीं करनी चाहिए ।"

"क्यों ?"

"अच्छा नहीं रहता ।"

"अच्छा तो तब रहता जब ये बातें मैं अपनी मां से करती ।.... .....रधिया ।" –रधिया के गाल की हल्की चुटकी भरते हुए मैंना दीर्घ स्वर में बोली –"अपने मन की बात तो मैं तुम्हें ही कहूंगी, अरी जमना है न, वह तो मुझे अपने खसम के साथ हुई गुप्त से गुप्त बात भी बता देती है । वह तो यह भी बता देती है कि वह पति .....।" –एक कटाक्ष करके मैंना ने अपने दोनों हाथों से रधिया की पीठ को पकड़ कर गुदगुदाना प्रारंभ किया । रधिया ने मचल कर मुक्ति पाई और कृत्रिमता से झिड़का मैंना को –"इस भांति गुदगुदाओगी तो मेरी कमर में लचक पड़ जायेगी ।"

"सच !" –आंखें औसतन आकार से दीर्घ हो गई मैंना की । जिस प्रकार गोलियां रानियों के समक्ष सिर झुकाकर प्रणाम करती है, ठीक उसी प्रकार का उपक्रम किया मैंना ने –"खम्मा रानी सा ने, मुझे माफ कर दीजो । ऐसी भूल दुबारा नहीं होगी ।"

"जाओ, हमने तुम्हें माफ किया ।" –खिलखिला कर हँस कर दोनों प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध हो गईं ।

रजनी समय के पंख पर उड़ रही थी ।

रेगिस्तान की रात्रि के शान्त पहरों में तरुणियों का यह निश्छल

किलोल उर्वरा भूमि की सुखद सरिता सा प्रतीत होता था। निरावरण की भोली भाली बातें हृदय को मोह लेती थीं। जान पड़ता था जैसे जीवन की वास्तविक गति और चंचल अल्हड़ता सिमट कर इन दो युवतियों के हृदय में समा गई है।

यह सत्य भी था।

आलिंगन से विलग होकर रधिया ने कहा –"मैंना ! तू मेरी पक्की भायली है ?"

".....!" –सिर हिलाकर मैंना ने अपनी स्वीकृति दी।

"तेरा मेरा भायला भी एकदम पक्का है ?"

"इसमें तुम्हें फर्क लगता है ?"

"क्या एक नाई की जाई और बामन की बेटी की दोस्ती जीवन भर निभ सकती है ?"

प्रश्न भयानक था जिसका उत्तर इतनी सहजता और सत्वरता से देना संभव नहीं था लेकिन मैंना ने छाती ठोंककर कहा –"दोस्ती कच्ची डोरी नहीं होती है रधिया, जिसे जब चाहा तोड़ लिया और जब चाहा जोड़ लिया।"

मैंना के चंचल स्वर में वृद्ध की गंभीरता आ गई –"हृदय की डोरी बहुत पक्की होती है। बंधकर टूट नहीं सकती।"

"पर मेरा बाबा कहता था कि अब तुम दोनों बड़ी हो गई हों, एक साथ खाओगी– पीओगी तो पण्डित लोग मैंना के बाप को बिरादरी से बाहर कर देंगे।"–ठहरते ठहरते कहा रधिया ने। उसकी पलकों में शंकाकुल स्थिरता आ गई।

"बस इतनी सी बात के लिए इतनी भारी चिन्ता करने लगी ?,..... रधिया अब हम खेतों में छिप छिप कर एक साथ खायेंगी-पीयेंगी, जहां वह पण्डित का बच्चा क्या, उसका बाप भी हमारा पता नहीं लगा सकता।"

"पर तेरा मेरा हाड़-मॉस तो एक सा है ?"

"लेकिन धर्म जो एक नहीं है।"

"तो ?"

"जो मैंने तुम्हें कहा, वही हम करेंगे।" –कहकर मैंना ने रधिया को अर्थभरी दृष्टि से देखा और रधिया ने मैंना की आंखों के मचलते साहस को दृढ़ता से निहारा ।

तब दोनों चल पड़ी अपने अपने घर को।

अल्प काल तक एक दूसरी ने एक दूसरी की पगध्वनि को सुना और बाद में धीरे धीरे पगध्वनियां भी चांदनी की मौनता में खो गई।

रात तारों की चुनरी ओढ़े शनैः शनैः प्राची की ओर उन्मुख हो रही थी।

और प्राची में सुबह का तारा ऊषा की लालिमा से संघर्ष करने में दत्तचित हो गया था।

२

मुर्गे की बांग के साथ रेवतदान हरे राम की जोरदार आवाज लगाता हुआ उठा। कुछ क्षण तक उसने अपनी अलसाई पलकों को हथेलियों से मसल करके निद्रा को भगाया और तब वह कुल्ला करने के लिये घर के एक छोर पर निर्मित पणीढे० में रखी मटकी में से पानी लेकर कुल्ला करने लगा।

०पानी घर ।

रेवतदान के घर में दो कमरे थे, एक था पणीढ़ा और पणीढ़े के साथ थी रसोई■ । एक कमरे में घर का सामान था उस सामान के साथ ही रधिया की खाट बिछी थी, रधिया आजकल वहीं सोती थी क्योंकि रेवतदान को अब रधिया को अपने कमरे में सुलाते संकोच होने लगा था और संकोच के साथ बिरादरी का भय, संदेह, और झूठी निराधार चर्चाओं के हो जाने का भी अन्देशा हो गया था । दूसरा जो कमरा था उसमें रेवतदान खुद सोता था और उसमें भी व्यर्थ की इधर उधर की वस्तुएं पड़ी थीं। घर के चारों ओर काटों की बाड़* थी । उस बाड़ के एक कोने में दो घास फूस की झोपड़ियां बनाई हुई थी, उनमें रेवतदान की दो गायें रहती थीं ।

कुल्ला करके रेवतदान ने धैर्य से पुकारा –"रधिया, ओ रधिया बेटा, भोर हो गया है, उठ जा ।"

रधिया सत्वरता से आंखें मलती हुई उठी और बिस्तरे को खाट पर समेटती हुई कमरे के भीतर से ही उसने उत्तर दिया –"आई बाबा ।"

ओढ़नी को अंगिया पर डालती हुई रधिया बाबा के समक्ष आकर उसे प्रश्न भरी दृष्टि से देखने लगी ।

बाबा जम्हाई लेकर बोला–"मैं रामदास के यहां जा रहा हूं, आज उसके बाप का श्राद्ध है, सारी बिरादरी को न्योता देने जाना है !"–इतना कहकर बाबा अपने कमरे की ओर चला और रधिया भी उसके पीछे सिर खुजलाती हुई चली ।

"हां सुन तो ?"–बाबा साफा पहन कर बोला –"मेरे लिये खाना मत पकाना , मैं आज जजमान के यहां ही खाऊंगा ।"

"तो मैं भी बाबा अपन अकेली के लिये चूल्हे से सिर नहीं लड़ाऊंगी ?"

■भोजनालय, *कांटों की दीवार ।

"मत लड़ाना, तेरे लिये भी कुछ मांग लाऊंगा।" – कहकर नंगे बदन ही रेवतदान बाहर चला गया। क्योंकि रेवतदान सर्दी भर रुई की बनी एक बगलबन्दी पहनता था और गर्मी में नंगे बदन ही रहता था ।

अप्रत्याशित रधिया चौंक पड़ी। जोर से पुकार बैठी –"बाबा !"

"क्या है ?"–झल्ला पड़ा रेवतदान–"लाख बार तुमसे सिर पीट पीट कर कह दिया है कि जाते समय मत पुकारा कर, पर तू अपनी आदत से बाज ही नहीं आती ।"

"पर तू अपनी हजामत की पेटी जो भूल रहा था ।"

"आज उसकी जरूरत नहीं है ।"

रधिया का चेहरा उतर गया। बाबा बाड़ से बाहर हो गया।

रधिया की मां का देहान्त उसके शैशव में ही हो गया था अतः रेवतदान ने अपने अन्तराल का समस्त स्नेह, प्यार-दुलार, ममता रधिया पर अर्पण कर दी थी । रधिया जैसे अपने गरीब बाप का अपार प्यार पाकर निहाल हो गई थी । धीरे धीरे वह कली विकसित होने लगी और आज जीवन के उस छोर पर थी जहां वह नारी सुलभ लज्जा और अल्हड़ता दोनों को नयनों में बसाये रहती है, जिसे हम सब ने यौवन कहा है ।

वह कुछ देर तक यों ही बैठी रही ।

तब सिर पर मटकी रख करके कुएं की ओर चल पड़ी ।

रास्ते में मिल गये पुजारी हरिकृष्ण। हरिकृष्ण गांव के एकलौते मन्दिर के अकेले सत्ताधिकारी थे। गांव से भिक्षा मांग कर मन्दिर के देवता का पेट तथा अपना पेट दोनों भरते थे ।

अभी वे चार छः आदमियों को बड़ी गंभीरता से उपदेश दे रहे थे। वे उन्हें समझा रहे थे कि वास्तव में भिक्षा किसको देने से धर्म होता है –"दान उसी को ही देना चाहिए जो दान देने का पात्र है । ये मंगते और पाखंडी साधु-जोगी हैं न, इनके हाँड हराम का खाते

खाते इतने निकम्मे हो गये हैं कि अब इनसे हाथ पांव चलाये नहीं जाते । इसलिये इन्हें दान देना कोई पुण्यकारी नहीं ।"

तभी आगई रधिया ।

रधिया ने पुजारी जी की बातों को कान लगा करके सुना । उनकी दिव्यवाणी का ध्यानमग्न होकर श्रवण किया । तब तमक करके उनकी बगल में लटकी आटे की झोली को पकड़ती हुई व्यंग भरे स्वर को दीर्घ करके बोली –"क्यों पुजारीजी, आप तो इस झोली का आटा दान करने जा रहे हैं ?"

जिस हास्यास्पद लहजे से रधिया ने ये शब्द कहे थे, उन्हें सुन करके सब श्रोता दांत निकाल कर हंस पड़े । पुजारीजी रधिया को सम्बोधित करके अनर्गल प्रलाप करते करते चले गये ।

पुजारीजी के चले जाने के पश्चात मंगू बढ़ाई ने कहा–"छोरी ! तेरा लड़कपन अभी तक नहीं गया है पर कभी पुजारीजी गुस्से हो गये तो ठीक नहीं रहेगा ।"

"क्या ठीक नहीं रहेगा ? फांसी तो देने से रहे ।" –रधिया अपनी छाती का झटका देकर चल पड़ी ।

रास्ते में साहूकार छगनराम की दूकान थी । छगनराम की दूकान के भुजिये (सेव) रधिया को अत्यन्त स्वादिष्ट लगते थे और रधिया उन्हें सदैव खाया करती थी लेकिन आज पैसों के अभाव में वह अपना मन मसोस कर रह गई । उसकी दूकान के आगे से गर्व से सीना तान करके, भुजियों पर बिना दृष्टि फेंके ही निकल गई । छगनराम उसे देखते ही कर्कश स्वर में मुंह बिगाड़ कर बोला– "आ गई है चण्डी ।..... इसे तो दूर से ही लम्बे हाथ जोड़ना चाहिये ।"

"भाई रामसखा बड़ी तेज लड़की है झूठ बोलने में, झगड़ा करने में, झगड़ा कराने में, पति को पत्नी से लड़ाने में, मां को बेटे के लिए पागल

कराने में,.....इधर की उधर और उधर की इधर करने में सारे गांव में इसकी बराबरी नहीं है।"

इतना कहकर छगनराम निश्वास छोड़कर पश्चाताप से सिर हिला कर बोला –"रामसखा ! एक रोज मेरी दूकान पर यह भुजिये लेने आई। मैंने कहा कि पैसे लाओ, तो चण्डी बोली कि पैसे कल दे दूंगी।"

"कल ! न बाबा न, उधार का धंधा मेरे यहां नहीं होता।"

"चोरों से नहीं होता होगा सेठजी ! हमारा धंधा तो साहूकारी धंधा है। बराबर लेन-देन करते हैं। अभी मेरा बाबा घर पर नहीं है, कल लाकर दे दूंगी, भरोसा रखिये।" – नयन तरेर कर वह तीव्र ध्वनि म बोली –"और नहीं दिया तो ठोक नहीं रहेगा,.....हां !"

यह धमकी सुनकर मुझे ताव आ गया। कल की छोकरी मुझे आंखें दिखाये, यह मैं कैसे सहन कर सकता हूं ? मैंने गर्ज कर डांटा –"मुझे धमकियां देती है छोकरी, अच्छा जा, नहीं देता, तुम्हें जो कुछ करना है सो कर ले।"

मेरा इतना कहना था कि यह चण्डी जोर जोर से रोने लगी। इसका रोना सुनकर दो-चार इधर के और दो चार उधर के आदमी इकट्ठे हो गये। इससे पूछा गया तो यह रोती हुई बोली –"साहू-कारजी ने मेरे पास से चार पैसे भी ले लिया और मुझे भुजिये भी नहीं दिये।.....बस रामरखा फिर क्या था ? लोग मुझे ही भला बुरा कहने लगे। मैं चीखता रहा, टर्राता रहा पर किसी ने मेरी एक भी नहीं सुनी। लाचार मुझे दो पैसों के भुजिये और दो पैसे नगद दक्षिणा के रूप में और देने पड़े, ऊपर से। ऐसी है यह बिगड़ैल छोकरी ?"

साहूकार ने इतना कह करके आकाश की ओर अपने नयनोन्मुख करके नमस्कार की जैसे वह भगवान से प्रार्थना कर रहा है कि इस बला से सबको बचाये रख।

लट्टू ने तेल की बोतल हाथ में लेते हुए साहूकार से सब कुछ जानते हुए भी मनोरंजनार्थ पूछा –"इसका बाप क्या करता है ?"

"लट्टू जरा इस चण्डी से पूछो न, तपाक से कहेगी –सारे गांव की हजामत ।"

लट्टू हँस पड़ा ।

छगनराम दूसरे ग्राहक के लिये नमक तोलने में निमग्न हो गया ।

और रधिया कुएं पर पहुंची ।

कुएं पर अनेकानेक स्त्रियां पानी भर रही थीं । रधिया की चौधरी घनीराम के बेटे गजाधर की बहू जमना से खूब पटती थी, रंग लगा हुआ था । अनमनी सी उसके समीप जाकर खड़ी हो गई । एक पल, दो पल, तीन पल यूं ही बीत गया ।

"बहन !" – रधिया ने उदासी से कहा–"तू तो जानती है कि मेरी भुजिये खाने की आदत पड़ गई, दो पैसे दे न !"

"....." – जमना ने कोई उत्तर नहीं दिया ।

"क्या करूं जमना, इस आदत ने मुझे मजबूर कर दिया है। जिस प्रकार भांग का नशा करने वाले को ठीक समय पर भांग पीनी ही चाहिए, ठीक उसी प्रकार मुझे भुजिये खाने ही चाहिए ।"

जमना रधिया से कम चतुर नहीं थी। रधिया यदि डाल-डाल चलती थी तो वह पत्ते पत्ते पर चलती थी – "क्या करूंर धिया, खोसे (जेब) में फूटी कौड़ी भी नहीं है । होता तो बिना मांगे ही दे देती ।" – जमना ने अपने सिर पर मटकी रखी और चलने को उद्यत हुई । पर रधिया उसे इतनी सरलता से नहीं छोड़ने वाली थी, तुरन्त अपनी मटकी भरकर उसके साथ हो गई ।

दोनों नितान्त सन्निकट होकर चल रही थीं ।

जमना ने एक हाथ से अपने सिर की मटकी को पकड़ रखा था और दूसरे हाथ से लहँगे को जिससे उसकी गोरी गोरी मांसल पिण्डलियां स्पष्ट

रूप से दिखलाई पड़ रही थी। घूंघट चेहरे पर से न हट पाये, इस वास्ते उसने घूंघट के पल्ले को अधरों के मध्य में दबा लिया था।

अभी तक दोनों कुछ दूर निकली ही थीं कि रधिया जमना के आगे एकदम आकर आंखें तरेर कर बोली–"देख जमना ! तुम्हें झूठ बोलने की सौगन्ध है और सच कभी बोलती नहीं। इस वास्ते तेरे पास पैसा होते हुए मुकर जाना कोई नई बात नहीं है, क्योंकि में यह अच्छी तरह जानती हूं कि तू भी आदत से लाचार है।"

"हां बहन, बात तो तूने लाख रुपये की कही है।" – जमना ने अपनी आंखें रधिया की आंखों में डालते हुए कहा–"मैं सच कभी बोलती नहीं और झूठ बोलने की सौंगन्ध है।" – दोनों खिलखिला कर हंस पड़ीं, समस्त भावनाओं को विस्मृत करके।

तब रधिया ने मटक कर कहा–"फिर दे दे इस बात पर दो पैसे।" रधिया की हथेली जमना के आगे फैल गई।

"तू ठहरी रधिया की रधिया ही।" – भाव भंगिमा को गंभीर किया जमना ने –"कह दिया न मेरे पास पैसा ही नहीं है।"

"पैसा नहीं है, तो अपना खोसा दिखा दे ! मुझे तेरे पर एक रत्ती का भरोसा नहीं।"

अब जमना जंजाल में फंस गई। सावधान होते हुए बोली –"यही तो तेरे में अवगुण आ गया है। तू तो किसी भली स्त्री की इज्जत लेने को उतर आती है।..... में ठीक कहती हूं कि मेरे पास पैसा नहीं है। अरी दो पैसे की क्या बात ? कहो तो तेरे पर यूं ही वार दूं।" – जमना ने शेखी बघार कर यह सोचा कि चलो अब तो पिंड छुटा लेकिन रधिया नयन कटाक्ष करके बोली –"फिर तू खोसा क्यों नहीं दिखाती ?"

समस्या बड़ी गंभीर हो गई थी। जमना के खोसे में पूरे दो आने के पैसे थे और रधिया की बातों में वह ऐसी बंध गई थी कि न हां कहते बनता था और न ना कहते। धर्म संकट में तिलमिलाने

लगी जमना। क्या करे और क्या न करे ? अचानक अन्तर के किसी सद्-विचार ने उसके उन्मन अधरों पर मुस्कान धावित कर दी– "रधिया ! मेरे पास पैसे तो हैं पर यह धन धनियों का है, दास बेचारा क्या करे ?"

जमना से इस प्रकार का कोरा उत्तर पाकर रधिया का सम्मान जाग उठा। भृकुटि वक्र करके तीव्र स्वर में बोली –"मैं कोई भीख नहीं मांग रही हूं, समझी ! दो घड़ी के लिए उधार लेती हूं, बाबा आयेगा तो वापस दे दूंगी।..... नहीं देना है, तो साफ क्यों नहीं कह देती, इधर उधर की बातें बनाने से क्या लाभ ?" – रधिया के स्वर में अब आक्रोश का सम्मिश्रण हो गया था –"मे तेरी पक्की भायली हूं पक्की और तेरे जी से दो पैसे भी नहीं उतरते।"

रास्ता दोनों का एक होते हुए भी रधिया क्रोध के मारे फुत्कारती वीरान पथ की ओर बढ़ गई।

इस वीरान पथ में रेत के टीलें अधिक मात्रा में पड़ते थे और भोर होते ही प्रातः समीरण का आनन्द लेने के लिए अथवा शौच से निवृत होकर लोग घंटों इन टीलों में गप्पे हाँका करते थे।

रधिया को रह रह कर जमना से प्रतिशोध लेने की धुन सवार हो रही थी। बार बार उसकी आंखों में प्रतिशोध प्रकाश पुंज की भांति दहक उठता था।

"रधिया !" – किसी ने पुकारा।

रधिया ने उस ओर देखा– "गजाधर है।"

रधिया अन्यमनस्क सी उसे निहारने लगी।

शौच से निवृत होकर गजाधर रेत के टीलों के मध्य शीतल वायु का सेवन कर रहा था। कभी कभी वह अपने खुरदरे स्वर से कोई लोकगीत गुनगुना देता था।

रधिया अल्पकाल तक उसे एकटक निहारती रही और उसी प्रकार

निहारती निहारती वह गजाधर के पास आकर मटकी को ठीक तरह रख कर, इस प्रकार चेहरा उतार कर बैठ गई जैसे वह किसी का खून करके आई हो ।

रधिया के बैठने पर गजाधर भी उसे विस्मय से निहारता रहा । फिर एक जोर का कहकहा लगाकर पूछ बैठा –"रधिया ! क्या बात है जो तू आज इस वीराने से चली जा रही है ?"

"....." – रधिया पूर्ववत मुद्रा में बैठी रही–निश्चल ।

"जरूर किसी ने तुम्हें खरी खोटी सुनाई है तभी तो तू मन मारे बैठी है ।" – गजाधर उसे एकटक दृष्टि से देखने लगा ।

हठात रधिया की आंखें गजाधर की आंखों से टकराई । हाथ यंत्रवत से ओढ़नी के उस पल्ले की ओर गये जो कटिप्रदेश पर लहरा रहा था और देखते देखते ओढ़नी ने उसके उरोजों को अपने से ढक लिया ।

"बात तो बड़ी भाँडी० है पर तुम्हें नहीं कहूंगी ।" – स्वर कुंठित था तथा रधिया ने अपना मुख दूसरी ओर घुमा लिया था ।

"ऐसी क्या बात है जो तू मुझे नहीं कहेगी ?' – गजाधर की जिज्ञासा बढ़ी । उसके स्वर में गंभीरता आ गई –"देख रधिया ! तुम्हें यह बात बतानी ही होगी, नहीं तो तेरा मेरा रिश्ता कट, न तू मेरी बहन और न मैं तेरा भाई ।"

गजाधर के वाक्य में अपनेपन का गहरा मिश्रण था । बड़प्पन का रंगीला रौब था । पर रधिया को नितांत मौन देखकर समझ गया कि रधिया ऐसे बताने की नहीं है अतः तुरन्त सहानुभूति का प्रदर्शन करता हुआ एक परामर्शदाता की भांति बोला –"भला ऐसी कौन सी बात है जो तू मुझसे छिपायेगी ?"

०भद्दी ।

"अरे, जा रे जा.....।" – लापरवाही से हाथ झिड़कती हुई रधिया आक्रोश से बोली –"तू किस खेत की मूली है ? आया है बड़ा मुझे अक्ल देने वाला। घर की जोरू संभाली नहीं जाती और चला है गांव की पंचायती करने ?"

रधिया का चेहरा तमतमा उठा।

"क्यों, क्या बात है ?" – क्षीण आकुलता थी गजाधर के स्वर में।

"नहीं, नहीं, मैं तुझे नहीं बताऊंगी, तू सुनकर कहीं अनर्थ कर बैठे तो ?" – रधिया के नयन विस्फारित हो गये। भय की रेखायें केवल उसके चेहरे पर नहीं बल्कि उसके रोम रोम से बोल उठीं।

विभिन्न विचारों के संघर्ष एक साथ गजाधर के मस्तिष्क में हुए। उसकी श्रवणेच्छा उत्कंठित हो गई पर रधिया को निर्वाक बैठे देख दीनता से बोला –"देख रधिया ! मैं किसी से कुछ नहीं कहूंगा, तू भरोसा रख।"

इसके बाद मिट्टी को मुटठी में ले लिया गजाधर ने – "मैं धर्म की सौगन्ध खाकर कहता हूं कि मैं तेरे कहे बिना अपनी जीभ तक नहीं हिलाऊंगा।" –गजाधर की आंखों में दीनता थी। जैसे उसकी दीनता भरी आंखें बोल रही थी–"मेरी बहु, हो न हो, जरूर किसी पर पुरुष पर डोरे डालती होगी।"

उसकी दशा पर जैसे रधिया को तरस आ गया हो, बड़प्पन से बोली "तू जीभ हिलायेगा ही नहीं, जोर जोर से चिल्लायेगा भी।"–रधिया दायें हाथ की हथेली पर बायें हाथ की दो अंगुलियों को दो बार पटकती हुई तीव्र स्वर में बोली –"गजाधर ! यह बात ही ऐसी है कि पेट में पच नहीं सकती, यदि तू उसे पचाने की चेष्टा करेगा, तो तुम्हें अजीर्ण हो जायेगा, तेरा पेट फूलता फूलता फट जायेगा।" –रधिया ने पश्चाताप से सिर हिलाकर एक निश्वास छोड़ा।

"आदमी आदमी का ही तो भरोसा करता है ?" – परामर्श दिया

गजाधर ने– "तू मेरे भले की बात बता देगी तो तेरा क्या बिगड़ जायेगा ?"

"बिगड़ेगा तो किसी का भी नहीं पर बात.....!"

"क्या बात बात लगा रखी है तू ने ?"– एकदम झल्ला पड़ा गजाधर। क्रोध से उसकी आंखें लाल हो गई ।

रधिया ने सोचा कि अब तो बना बनाया मामला बिगड़ा तो अत्यन्त धीमे स्वर में बोली –"बात यह है गजाधर भैया कि तेरी ससुराल मेरे घर के समीप है न ? इस वास्ते बहन के सिवाय मेरा और तेरा एक नाता और बनता है – साली-बहनोई का ।.....सो आज जमना बहन कह रही थी कि तेरा बहनोई तो चौबीसों पहर तेरे नाम की ही माला जपा करता है।....वह तो तेरा रामू० बना हुआ है रामू । मैं यह सुनकर बिगड़ पड़ी । जमना पर लाल पीली हो गई। बात ने बढ़कर "तू तू मैं मैं" का रूप धारण कर लिया तब आपकी लाडली फरमाती है, वह भी कड़क कर कि विश्वास न हो तो खुद जाकर उनसे पूछ लो ?"

इतना कहकर रधिया मौन हो गई । उसकी भावमुद्रा से स्पष्ट ज्ञात हो रहा था कि उसे इस कथन से हार्दिक क्लेश हुआ है –"भैया ! इस प्रकार की बातें करनी कहां तक ठीक है, तू ही जान ।" – रधिया के नयन नत हो गयें । पलकों में व्यथा का ऐसा उभार हुआ कि नयन छोर तरल हो गयें ।

गजाधर की दशा तो बड़ी विचित्र थी । उसकी घरवाली के ऐसे कुविचार होंगे, यह वह सात जन्म में भी नहीं सोच सकता था । वह अपनी बहू को निश्छल, निष्कपट और साध्वी समझता था और पत्नी के ऐसे पतित विचार देखकर उसकी आत्मा घुटने सी लगी ।

०मजनूं की भांति प्रसिद्ध प्रेमी ।

आकृति पर प्रतिहिंसा की भाव लहरियों के दौड़ने पर वह तनिक भयानक सी जान पड़ने लगी । ये देखकर रधिया गजाधर को समझाती हुई बोली –"भैया तू तो खुद ही जानता है कि गांव में ऐसी बातें हवा की भांति फैलती है । भगवान के लिए इतनी ओछी (छोटी) बातें मुंह से मत निकाला कर, वर्ना मेरी बदनामी हो जायेगी ।"

रधिया ने देखा कि उसके मौन होते ही गजाधर की मुट्ठियां चोट खाये आहत सिपाही की भांति बंध गई हैं । दोनों दांतों की बत्तीसी परस्पर निर्ममता से टकरा गई हैं । ऐसा प्रतीत होता था जैसे गजाधर घर जाकर जमना की हड्डी पंसली एक कर देगा ।

"संसार में किसी का भी भरोसा नहीं करना चाहिए, देख रधिया, मेरे मन में भी कभी ऐसे कुविचार नहीं आते हैं और यह निखट्टू मेरे नाम से ऐसी बातें करने लग गई, जी तो चाहता है कि सीधा जाकर उसका गला घोंट दूं ।" –कहते कहते गजाधर के हाथ गला घोंटने की मुद्रा में हो गये ।

"नहीं, नहीं, ऐसा न कर बैठना, तुम्हें मेरी सौंगन्ध है कि जमना को एक शब्द भी तू न कहना ।.....शायद उसने गुस्से के मारे अथवा मुझे चिढ़ाने के लिए कह दिया हो तो ?"

रधिया ने मटकी सिर पर रखी और चलने को उद्यत हुई ।

"मैं यदि कुछ नहीं कहूंगा तो उसका मुंह सदा के लिए खुल जायेगा ।" – गजाधर ने कहा ।

"लेकिन भगवान के वास्ते आज तो कम से कम मत कहना ।"

"अच्छा ।"

रधिया चल पड़ी ।

गजाधर तेज कदम उठाता हुआ अपने घर की ओर बढ़ गया ।

तब रधिया का मधुर कंठ-स्वर यौवन की अल्हड़ता लिए गूंज उठा उस निर्जन मरुभूमि में–

"ससुरे जी चिणाया कुवां बावड़ी
अे पणिहारी ए लो"०
गीत धीरे धीरे शान्त हो गया ।
रधिया का छोटा सा घर अब दिखलाई पड़ने लग गया था ।

ग्वाला दूध दूहकर चला गया था । बाड़ में प्रवेश करते ही उसने देखा कि छबीली खड़ी खड़ी जुगाली कर रही है । गोरी गर्दन को धरती पर टेके, आंखें मीच कर सो रही है । चौंकी पर दूध के छींटें लगा हुआ गुणिया■ रखा हुआ है ।

रधिया ने मटकी रखकर सर्वप्रथम गुणिये को उठाकर रसोई में रखा और फिर गोरी की ओर बढ़ी ।

गोरी रधिया की भांति सारे गांव में प्रसिद्ध थी । इतनी बदमाश थी कि लोग इसके मारे चैन से नहीं रह सकते थे । इसके द्वारा गांव के कितने ही बच्चे हाथ पांव तुड़वा चुके थे तथा इसकी असीम कृपा से कितने ही वृद्ध गांववाले राजा बीरबल की तीसरी टांग पा चुके थे याने लकड़ी का सहारा ले लिया था । लेकिन गत दो माह से गोरी की बदमाशी में जिस मात्रा से वृद्धि हुई, उससे गांववाले बड़े चिन्तित हुए थे । उन्होंने रेवतदान के घर आकर उसे समझाया-बुझाया था और यह हिदायत दी थी कि यदि वह अपनी गाय को काबू में नहीं रख सकेगा तो हम लाचार होकर इस गाय को गांव से निकाल देंगे ।"

समस्या को अत्यंत गंभीर होते देखकर रेवतदान ने तुरन्त एक बड़ा घंटा उसके गले में बांध दिया था, जिससे उसके आगमन की सूचना दो मील दूरी से ही हो जाती थी तथा घंटे के बोझ के कारण गोरी भी अपने आप कुछ कुछ सयानी हो गई थी ।

पर मनुष्य की भांति पशुओं का स्वभाव भी बड़ा विचित्र होता है ।

०राजस्थान का एक लोक गीत, ■दूध दूहने का विशेष बर्तन ।

गोरी सबसे जितनी नाराज रहती थी, वह उतनी ही रधिया को प्यार करती थी। रधिया जब गोरी के समक्ष आती तो गोरी उसे प्यार से चाटने लगती थी और रधिया भी उस निर्वाक पशु की गर्दन में अपनी बाहें डालकर, जिस प्रकार बच्चा अपनी मां के गले में लटकता है, ठीक उसी प्रकार लटक जाती थी, झूल जाती थी, तभी तो गांव में यह बात बड़ी प्रसिद्ध थी कि चोर से चोर मिला, करके लम्बे हाथ।

रधिया ने गोरी की गर्दन पर थपकी देकर उसे जगाया। जगाते हुए उसने कहा –"निगोड़ी ! आजकल तू दिन प्रतिदिन आलसी होती जा रही है।.....उठ।" – रधिया ने गोरी की पूंछ को जाकर मरोड़ा। वह उठी। अंगड़ाई लेकर उसने गोबर किया। तब रधिया ने कहा –"मोहन के पास सीधी चली जाना, कहना, तेरी रधिया कल दोपहर को आयेगी।"

गोरी ने रंभा दिया जैसे वह कह रही है कि आपकी आज्ञा शिरोधार्य है मेरी स्वामिनी।

"और हां !" – उचक कर उसने एक चिथड़े पर कोयले का काला निशान बनाया और गोरी के गले के घंटे में बांधती हुई बोली –"यह भी तू मोहन को दे देना।"

गोरी इस बार रंभाई नहीं।

रधिया की आंखें गुस्से से भर आईं।

तुनक पड़ी –"मौका पाकर तू भी नखरें करने लगी, कर तो सही, पर मैं भी तुम्हें आज गुड़ नहीं खिलाऊंगी, जा।"– रधिया रूठने का उपक्रम करने लगी। न जाने गोरी को उसका रूठना रुचिकर क्यों नहीं लगा ? अतः उसने जोर से रंभा दिया।

"तू कितनी अच्छी है गोरी।" – झूम पड़ी रधिया जैसे उसके मदमस्त नटखट यौवन का एक एक तार बज उठा हो।

इसके बाद रधिया ने गोरी को बाड़ के बाहर कर दिया। विपत्ता की सूचना देने वाला घंटा बजने लगा और बजता बजता प्रकृति की शून्यता में विलीन हो गया।

३

एक दीया जला था—वीर क्षत्रियों की सभ्यता का।

वीरों का कवच और आभूषण थी वीरता।

और वीरता युग के प्रवाह में बहती बहती वैभव बन गई।

धन की प्रचुरता और धरती की अधिकता ने उन वीरता के स्वामियों का आतंक मृत्यु सा बिछा दिया – अशिक्षित भोली भारतीय ग्रामीण जनता पर।

जौहरव्रत करने वाली इनकी वीरांगनायें वैभव की वीचियों में तरंगित होने लगी थीं।

पूर्वजों के संस्कार उनके बुरे स्वाभाव और उनके दुष्कर्म इन क्षत्रिय-सामन्तों की सभ्यता और संस्कृति के अंग बन गये थे।

विदेशियों के आक्रमण और उनकी परतंत्रता ने उन्हें इतना त्रस्त करना प्रारम्भ किया कि ये सामन्त और उनकी अपनी रजपूताई घास चरने चली गई तब उन्होंने समझा हमारी वीरता का दीया अन्तिम श्वांस ले रहा है।

जिस गांव के ठाकुर जसवन्त सिंह जी थे, उनके कितनी ही पीढ़ी के

पूर्वज जुगल सिंहजी ने अपने नरेश को अपने ग्राम की एक अत्यन्त सुकुमार कन्या नजराने में भेंट की थी, जिसके अतुलनीय सौंदर्य ने उस स्वामी भक्त राजपूत को यह गांव पुरस्कार स्वरूप प्रदान कराया था। तब नरेश का गोला० जुगल सिंह अपने ग्राम की अपनी ही बहन को नरेश को भेंट करके ठाकुर बन गया। इसकी पांचवीं पीढी के ठाकुर थे प्रताप सिंहजी।

प्रताप सिंहजी ने उस गांव के ठाकुर-पद पर अधिष्ठित रहकर पूर्ण सुख का उपभोग किया और एक नहीं, दो विवाह करके तथा दो रखेलें रखकर, उनकी अर्थियां भी अपने हाथों से निकाल करके स्वर्ग सिधार गये। मरते मरते उन्होंने एक लड़की पोतकी को और रखेल रखा था, बस आज वही जीवित थी।

उनके दो पुत्र थे—नारायण सिंह और जसवन्त सिंह।

नारायण सिंह के बारे में लोगों का कहना था कि वे पागल हो गये हैं और आजकल गोचर भूमि में रहते हैं। आदमी नहीं, पूरे राक्षस हैं।

अत: अपनी परम्परा के अनुसार जसवन्त सिंहजी उस गांव के ठाकुर बनाये गये थे।

ठाकुर जसवन्त सिंह की आयु अब चालीस को पार कर चुकी थी पर उनके ठाट बाट एक युवक से कम नहीं थे। अपनी परम्परा के प्रतीक अब भी वे ही कसूम्बे+ के जाम चल रहे थे, अब भी वही सुन्दरी-सेवन चल रहा था। वही गर्दन न झुकाने वाली आन थी, वही मूंछे मरोड़ने वाली शान थी।

सिर पर यत्र-तत्र सफेद बाल उग आये थे जिन्हें वे प्रकृति का तकाजा नहीं समझते थे बल्कि अगले जन्म का पाप समझते थे। हां, मूंछों के सफेद बालों को उन्होंने रेवतदान द्वारा कटवा लिये थे। क्यों कटवा लिये थे, इसलिये कि लोग उन्हें जवान समझें।

०दास, +एक मादक पेय।

यों तो ठाकुर के कितनी ही गोलियां थीं पर विवाह उन्होंने दो ही से किये थे। यह बात भी सर्व विदित थी कि पहली पत्नी तारा की मृत्यु बड़ी भयानक रूप से हुई थी। वह अपनी बेटी के लिए पागल हो गई थी, बावली बन गई थी, विक्षुब्धा बन गई थी।

घटना पन्द्रह वर्ष पूर्व की थी–

यही गांव।

गांव के बीचों बीच ठाकुर का लाल पत्थर का बना तीन मंजिला डेरा और डेरे पर गोलाकार गुम्बज।

चारों ओर कच्ची मिट्टी के सिसकते कंकाल की भांति छोटे छोटे कच्चे घर जिनकी आयु क्षय रोगी की भांति अनिश्चित, कब मृत्यु का निमन्त्रण आ जाये और कब इनका विनाश हो जाये।

एक छोटा सा तालाब, तालाब के दक्षिण छोर पर एक कुवां।

यही दो सौ घरों की बस्ती। दरिद्रता और ठाकुर के आतंक से पीड़ित।

पूस की रात।

पूस की बर्फीली पवन के तीर से चुभते हुए झोंको का स्पर्श कंपन पैदा कर रहा था। ठाकुर जसवन्त सिंह अपने बैठकखाने में मसनद तकिये के सहारे बैठे थे। उनके साथ उनका विशेष गोला नत्थू था।

जैसे जैसे रात बढ़ती जाती थी वैसे वैसे हाथ पांव को अकड़ा देने वाली ठंड भी बढ़ती जाती थी। सुलगी हुई अंगीठी के ताप को हाथों द्वारा लेकर ठाकुर ने अपने मुंह को गर्म किया –"नत्थू ! पांच साल के बाद कुलदेवी ने हमारी प्रार्थना सुनी है। जानते हो, ठकुराइन के अब बच्चा होने ही वाला है।"

"अन्नदाता ! कुलदेवी की कृपा होगी तो हमारे घर पर भगवान राम का अवतार जन्म लेगा।"

"इसमें क्या सन्देह है ?" – प्रश्न आंखों में बोला –"नत्थू !

हमारे जैसे पुरुषार्थी और शक्तिवान जवान के बेटी हो ही नहीं सकती, बेटी निर्बलों के होती है ।"

"आप बिलकुल ठीक फरमाते हैं अन्नदाता ।.....भला आपके बेटी कैसे हो सकती है ? आपके तो राजा दशरथ की तरह चार चार सपूत होंगे ।" – नत्थू के स्वर में चापलूसी की गहरी पुट थी जिसे ठाकुर नहीं समझ सके अपितु दंभ से अकड़कर, जोर का ठहाका मार कर, आंखों को विस्फारित करके बोले –"नत्थू ! जब अफीम का नशा जोर पर चढ़ा हो तो एक बार तो मैं सिंह को भी केवल हाथों से चीर सकता हूं ।"

"इसमें क्या फर्क है अन्नदाता !" – बात का रुख बदला नत्थू ने –"आपके और बेटी ?.....असंभव !" – दंभ से अकड़ सा गया नत्थू ।

"जरा हुक्का ला तो ।" – ठाकुर ने आज्ञा दी । नत्थू हुक्का लेने के लिए बाहर चला गया ।

बैठकखाने का पिछला दरवाजा डेरे के आंगन में निकलता था । आंगन में ही उसे मिल गई बाला ।

यह बाला ठाकुर साहब के दहेज में आई एक गोली थी । रंग उसका गोरा था । मांसल-सुघर तन आकर्षण का केंद्र बना हुआ था । दाहिने कपोल पर एक काला तिल था जो उसके सौंदर्य में श्री वृद्धि का कार्य करता था । उम्र होगी यही १६ वर्ष । स्वाभाव की अत्यन्त संकुचित और मितभाषी । सुहागिन नहीं, विधवा !

नत्थू ने बाला को देखते ही धीरे से कहा –"बाला !"

"क्या है रे ?" – बाला ने ठिठक कर पूछा ।

नत्थू ने निरुद्देश्य ही उसे पुकारा था अतः उत्तर देने के लि बगलें झांकने लगा । बाला उसे चुप देखकर पैनी नजर से घूरने लगी । – "तू बोलता क्यों नहीं ? क्या जबान के टांके लग गये है अभी तो कैंची की तरह झट चला बैठा ।"

"रोटियां पका ली ?" – मुंह खोला नत्थू ने ।

"हां पका ली,....तू खायेगा क्या ?"

"भूख तो लगी है ।"

"तो आ जाना ।"

"कब ?"

"थोड़ी देर के बाद, मैं ठकुराइन के पांव दबाकर आती हूं ।"

"जरा जल्दी करना ।"

"मैं तो जाती ही नहीं पर अगले जन्म जैसे कर्म करके आई हूं वैसे फल यहां पा रही हूं । तू देखता नहीं, पशु की तरह खटना पड़ता है ।"

गहरा पश्चाताप बाला के नेत्रों में दीप्त हो उठा ।

पलकों में क्षणिक स्थिरता आ गई । विवशता का संकेत करके नत्थू ने चलने के लिये कदम बढ़ाया –"अच्छा तू चल, मैं आ रहा हूं ।"

बाला भीतर की ओर चली गई । नत्थू ने हुक्का लाकर ठाकुर साहब के सामने रख दिया । ठाकुर साहब हुड़्ड़ड़ करके हुक्का पीने लगे ।

समीप ही दीवट पर रखा दीया बुझने लगा ।

ठाकुर साहब हुक्के की नली को मुंह से बाहर निकालते हुए उसे झिड़कते हुए बोले – "नत्थू ! अन्धे हो क्या ?"

"क्यों माई-बाप ?"

"दीया बुझ रहा है, वह दिखाई नहीं देता ?" –हुक्के का एक दम और भरते हुए ठाकुर साहब ने उसे झिड़का –"जब तक तुम्हें किसी काम के लिए न कहा जाये तब तक तू हाथ पांव नहीं हिलाता,.....अरे कभी अपनी मोटी बुद्धि से भी कुछ कर लिया कर ।"

नत्थू नीची गर्दन किये सुनता रहा । विरोध और कुछ कहना उसके लिये मना था । ठाकुर साहब जो कुछ भी कहें, उसे चुपचाप

सुनते रहना ही, उसके संस्कारों और परतंत्रता का कहना था ।

ठाकुर साहब बैठकखाने की दीवार पर अपनी दृष्टि जमा करके बोले –"जा और खा-पी, पर जरा बाला से कहना कि आज रात तुम्हें ठाकुर साहब ने बुलाया है, ऊपरवाले कमरे में आ जाना ।"

"हुक्म अन्नदाता !" – नत्थू चला गया ।

ठाकुर का डेरा प्राचीन नक्शे पर बना हुआ था। सब मिलाकर उस डेरे में आठ कमरे थे और एक था तहखाना ।

यह तहखाना डेरे के दक्षिण के दरवाजे से अपना सीधा संबंध रखता था । जब कभी ठाकुर साहब किसी को भयानक दंड देना चाहते तो इस तहखाने के एक कमरे में, जिसे काल कोठरी की संज्ञा दी हुई थी, बन्द करके तरसा तरसा कर दुख पहुंचाया करते थे अथवा कभी कभी गुप्त नाच गाने का प्रबन्ध किया जाता तो इसी तहखाने में। यह तहखाना गांववालों के लिये रहस्य था ।

डेरे के चारों ओर मिट्टी की दीवार थी । उस दीवार के एक ओर छः कोठरियां बनी हुई थी । इन छः कोठरियों में बाला, नत्थू, अणचा, पोतकी और लधिया रहते थे ।

अणचा के अपने दो पुत्र थे । एक था तीन साल का और दूसरा था एक साल का ।

पहले पुत्र के बारे में उसने कई रोज तक यह कहा था कि यह ठाकुर का अपना वंश है । लेकिन एक दिन ठाकुर ने अपने कानों से इस कथन को सुना तो अणचा पर अत्यन्त कुपित हुए । भांति भांति की दांत पीस पीस कर अश्लील गालियां निकाली और उसके उपरांत उस नमकहराम अणचा को चेतावनी दी कि उसने ऐसा कभी भी उटपटांग बका तो उसकी खाल खिचवा दी जायेगी, जमीन में गाड़ दी जायेगी ।"

पर इस बात से अणचा को मार्मिक वेदना हुई । गहरा आघात

सा लगा उसे कि यह ठाकुर साहब कितना निर्मम है ? जान बूझकर सत्य का गला घोंटने का जतन करता है। यह लड़का उसी का ही तो है, अब मुकर कर अपने को धर्मात्मा बताना चाहता है।

तो भी उस दिन के बाद इस भयंकर परिणाम से टकराने वाली भूल को नहीं किया अणचा ने।

पोतकी ढलती आयु की प्रौढ़ा थी जिसने अपना सर्वस्व जीवन ठाकुर साहब के पिता प्रताप सिंह जी की वृद्धावस्था में कई बार आत्म-समर्पण करके उत्सर्ग किया था। अतः जसवन्त सिंहजी उस मां स्वरूप गोली का हृदय से सम्मान करते थे। पर इसका स्वभाव बड़ा विचित्र था। गूंगी की भांति दिन रात चुपचाप निर्जीव सी बिस्तरे पर पड़ी रहती थी। न किसी को कुछ कहती थी और न किसी से कुछ सुनती थी। वह प्रत्येक से इतना भी सम्बन्ध नहीं रखती थी जितना उसे रखना चाहिए था। बीमार पड़ जाती तो भी उपचार के लिये किसी से भी एकशब्द नहीं बोलती थी। ठाकुर साहब यदाकदा सहानुभूति और अपनत्व का प्रदर्शन करने आते तो पोतकी उन्हें समझा दिया करती थी –"आपने यहां आने का क्यों कष्ट किया, एक गोली को धैर्य के इतने भारी शब्द कहने से आपकी मर्यादा में बट्टा लग जायेगा तो......? आप चले जाइये, मैं मर जाऊंगी तो सांभर× सूनी थोड़े ही हो जायेगी।"

ठाकुर साहब देखते थे कि पोतकी उन्हें कितने करारे व्यंग मार रही है और उन व्यंग की पीड़ा से पराजित ठाकुर साहब विवशता से बोलते थे –"आप जिस बात को पकड़ लेती हैं, उन्हें छोड़ती नहीं, शिला पर लोढ़े की भांति रगड़ती रहती हैं।"

"मैं !"–विस्मय से नयनों को स्थिर करके पोतकी विहँसी –"आप किस वास्ते मुझे लज्जित कर रहे हैं अन्नदाता ! मैं कौन सी हस्ती हूं ?"

×सांभरनमक की एक झील।

और अन्नदाता निस्सहाय व्यक्ति की भांति तड़प उठते थे और तुरन्त रौद्ररूप धारण करके बरस पड़ते थे –"पीतल को लाख सोना बनाने का जतन करो पर वह सोना बन नहीं सकता, कौवे को जीवन भर धोते रहो, उसका रंग सफेद नहीं हो सकता और तुम जैसी औरतों को चाहे रानियां ही बना दो पर अपना स्वभाव नहीं बदल सकतीं, मक्खियों की भांति नरक० पर ही मंडराती रहेगी ।"

जैसे ही ठाकुर साहब आंखों से ओझल होते वैसे ही पोतकी पूर्ववत शांत होकर अपने कार्य में जुट जाती थी । अगचा, बाला, नत्थू और लधिया उसे हाथ जोड़ जोड़ कर समझाते थे कि तू कुछ नर्मी से काम ले वर्ना कभी अनर्थ हो जायेगा पर पाषाण की प्रतिमा बोले तो पोतकी बोले । सबका सुनती, पर उत्तर किसी को भी नहीं देती और जब सुनते सुनते ऊब जाती तो ज्वालामुखी सी फूट पड़ती थी –"तुम लोगों का क्या लिया ? अनर्थ होगा तो मेरा. तुम लोग व्यर्थ का कष्ट क्यों मोल लेते हो ? जाओ अपना अपना धंधा करो ।"

पर अगचा का कहना था कि मैंने पोतकी के होठों पर उस समय हँसी देखी है जब ठाकुर साहब पर दुख का पहाड़ टूटता है ।

संध्या के समय तो पोतकी से एक शब्द भी बोलना दूभर होता था । उस समय के लिये उसके पास नपा-तुला उत्तर था –"मेरा सिर दुखता है. मैं नींद लूंगी ।"

लधिया यह बीस वर्ष का ठाकुर साहब का अपना कृपापात्र गोला था । सुडौल तन और श्री की कांति से दीप्त मुख मंडल उसका अपना विशेष आकर्षण था । मिष्टभाषी और खुशामदी स्वभाव के कारण ठाकुर साहब को अपने बस में सा कर रखा था । कुंवारा था और ठाकुर साहब को सदैव अकड़कर कहा करता था –"अन्नदाता ! मैं जीवनभर कुंवारा ही रहूंगा, ये स्त्रियां पूरा जंजाल है, इनके चक्कर में आ जाने के

०मल ।

बाद मनुष्य को मुक्ति नहीं मिलती।"– और ठाकुर साहब मूंछों पर ताव देते हुए उसकी पीठ पर जोर की थाप देकर कहते – "जा रे, उल्लू के पट्ठे जा, इतनी उम्र ले ली पर अक्ल एक छदाम भी नहीं आई ?"

"मैं ठीक कहता हूं अन्नदाता।"

"तू राख० ठीक कहता है, जब जोरू घर में आ जायेगी तो उसका घाघरा बन जायेगा ?"

"देखियेगा ?"

"मैं तो कितनों को देख चुका हूं, जा, अब मुझे आराम करने दे।"

इसके अलावा इन कोठरियों में बाला और नत्थू रहता था।

बैठकखाने से बाहर निकलते ही नत्थू अपनी कोठरी में आया और हाथ मुंह धोकर उदास सा दीपक के क्षीण आलोक में मौन विचार विनिमय करने लगा। वह कुछ भी अधिक नहीं सोच रहा था इसके अलावा कि भगवान ने उसे इस घर में क्यों पैदा किया जहां की सन्तानें दहेज में चढ़ा दी जाती हैं –माल असबाब की भांति।

बाला की पुकार सुनकर नत्थू ने पूछा–"क्या है बाला ?"

"आकर रोटी खा ले।"

नत्थू ने फूंक मार कर दीये को बुझाया और बाला की कोठरी में पहुंचा। बाला उसके सामने मिट्टी की बनी थाली रखती हुई बोली– "बाजरी की रोटी और फलियों× का साग है, गुड़ नहीं है मेरे पास, खाना चाहता है तो अणचा से मांग ला।"

"खाने की मनसा तो है पर उठकर मांगने कौन जाये ?"

नत्थू की यह बात सुनकर बाला उसे विस्मय से भरी दृष्टि से देखती हुई बोली –"अरे नत्थू ! तेरे हाथ पांव तो टूटे हुए नहीं है, पकी-पकाई रोटी मैं तुम्हें बना कर खिला देती हूं, तुमसे दो कदम चलकर गुड़ ही नहीं लाया जा सकता, क्या करेगा, आगे चलकर इस संसार में ?"

०खाक, ×ज्वार की फली।

"यह बात नहीं है बाला, पर मांगना-वांगना अच्छा नहीं रहता।"

"क्या कहने हैं तेरे ? बन गया है न करोड़पति ?"—थोड़शी बाला के नयनों में प्यार छलक उठा। समव्यस्क नत्थू उस दृष्टि को अधिक देर तक नहीं देख सका। लज्जा कर खाली थाली को हथेली से साफ करने लगा।

उसको निरुत्तर देखकर बाला के हृदय को अन्देशा हुआ कि मेरी इस कड़वी बात से उसे जरूर क्लेश पहुंचा होगा अतः उसने अपने शब्दों में आत्मीयता का पूर्ण प्रदर्शन किया —"तेरे चेहरे से जान पड़ता है कि तुम्हें मेरी बात से दुख हुआ है ?"

"नहीं तो ?"

"फिर मुंह क्यों उतार० लिया ?"

मैंने मुंह उतार लिया,.....? नहीं तो।" —सावधान होते हुए नत्थू बोला।

"यह तो तेरा मुंह ही बता रहा है, चांद सा खिला हुआ है ?" — उपहास किया बाला ने। —"ले हाथ तो हटा।"

कुड़छी (चम्मच) से साग को परोसा बाला ने —"रोटियां कितनी डालूं ?"

"तीन ?"

"तीन।" —स्वर हठात् तीव्र हो गया —"तीन कैसे डालूं, मैं तेरी बैरन थोड़े ही हूं।..... मैं तो पूरे चार डालूंगी।"

चार रोटियां परोस कर बाला कोने में पड़ी मटकी से लोटा भरने वहां से उठ गई।

नत्थू को सहसा स्मरण हो उठा कि ठाकुर साहब ने उसे आज्ञा दी थी कि बाला को कहना कि आज रात ठाकुर साहब के कमरे में आ जाना। नत्थू ने बाला को कहने के लिये अपनी गर्दन को उठाया ही था कि उसके समक्ष वही प्यार भरी अंखियां नाच उठीं। हृदय पर हथौड़े से प्रहार होने

०मुंह उतारना=उदास होना।

लगे। भावनायें मार्मिक आघात से चीख उठीं। मन ही मन बोला– "ठाकुर सा ! केवल उसे ही यह क्यों कहते हैं कि तू जाकर बाला को भेज देना।.....नहीं, आज वह बाला को नहीं कहेगा, कदापि नहीं कहेगा। कहाँ गाय सी भोली भाली कोंपल सी कोमल बाला और कहाँ राक्षस जैसा ठाकुर !.....नहीं, आज मैं बाला को नहीं कहूंगा चाहे ठाकुर सा मेरी खाल ही क्यों न उधेड़ दें ?.....और यह बाला भी क्या समझेगी ? सोचेगी कि नत्थू में कुछ भी हया-दया नहीं। मैं उसकी इतनी चाकरी करती हूँ और वह उल्टा मेरा ही.....? नहीं, नहीं, मैं आज कदापि बाला को नहीं कहूंगा चाहे मुझे ठाकुर सा कितना भी मार ले–पीट ले ?" – हृदय के रोष की उष्णता नत्थू के ललाट पर श्वेद कण का रूप धारण करके बाहर आ गई।

उस श्वेद कणों को संकेत करती हुई बाला पूछ बैठी–"नत्थू ! इस भयानक सर्दी में तुम्हें पसीना क्यों आ रहा है ?"

"पसीना !"–चौंक पड़ा नत्थू–"नहीं तो।"– ललाट पर हाथ लगाया तो उसे पसीने से तरबतर पाया। पसीने को अपनी लम्बी अचकन की बाह से पोंछता हुआ सर्वथा झूठ बोला–"हां, साग में बड़ी तेज मिर्च है, मुंह बल रहा है, शायद उसी से आ गया।"

"तो फिर मैं ही गुड़ मांग लाती हूं। मैं तेरे कष्ट को नहीं देख सकती।" –बाला उठकर अणचा की कोठरी की ओर चली।

नत्थू पुनः सोचने लगा –"बाला कितनी भोली है ? इस सारे संसार में अकेली एक यही है जो मुझसे मोह रखती है। मेरा लाड़-प्यार करती है। मेरे दुख से इसे दुख होता है, मेरे सुख से इसके अंग-अंग की कली-कली मुलक० उठती है।"– और उसके चेहरे पर गंभीरता मूर्त्त हो उठी। स्पन्दन हीन-सा वह निर्वाक बैठा रहा। उसकी विचार धारा जीवन के

०मुस्करा।

आवर्त्तन में तीव्र गति से घूमने लगी। जीवन का अभाव उसके अन्तर में बोल उठा –"यह बाला यदि मेरी बहू होती तो कितना मजा रहता, सुन्दर है, भोली है, बाली उमरिया पर लाल चुनरिया कितनी भली लगती है ?.....बेचारी के भाग्य ही फूटे हुए थे, नहीं तो इसका अपना धणी० बीच मँझधार में छोड़कर क्यों मरता ?....और यह ठाकुर ? बाप रे बाप !....पूरा राक्षस है। कहता है कि ऐश करना हमारी आन है, किसानों से बेगार कराना हमारा धर्म है। और जब गांव पर विपत्ता आती है तो सबसे पहले खुद भाग जाता है। तब तो अपने बाप-दादों की भांति रैयत की सेवा करने नहीं आता।.....कसूम्बे के नशे में रात रात भर बाला के शरीर को नोचता रहता है, काटता रहता है, तड़के आकर उसे संभालता तो नहीं। बना है बहुत धर्मात्मा, अन्नदाता ! देख ! अन्त में तेरी क्या गत होती है। हम नहीं हैं कि जब चाहा खून बहा दिया, वह तो प्रभु हैं, उसके सामने अकड़ना, तुम्हें जलती हुई तेल की कड़ाई में फेकवा देगा, तब दिखलाना मूंछों के ताव ?"–विचारते-विचारते नत्थू की मुट्ठियां बंध गईं। निचले होंठो पर ऊपर के दांत चुभने लगे। बाला ने भीतर प्रवेश करते हुए नत्थू की क्रोधित मुद्रा को निहारा। प्यार से उसके सिर पर हाथ फेर कर बोली –"नत्थू ! तेरी मुट्ठियाँ क्यों बंध गई हैं ? तू किस पर लाला-पीला हो रहा है ?"

"अपने भाग्य पर या उस भगवान पर, जिसने मुझे ऐसा जीवन दिया है।" –नत्थू ने दृष्टि भर बाला को देखा। एक हृदयवेधक वेदना बाला के मुख पर नाच रही थी। उसके हाथ का कौर हाथ में रह गया। चलू करके+ सीधा अपनी कोठरी में आकर पड़ गया।

बाला ने भी न जाने क्यों नहीं खाया, वह भी दीया बुझा कर सो गई।

ठाकुर सा के मस्तिष्क पर जब कसूम्बे का पूर्ण प्रभाव हो चुका तब

०पति, +चलू करके=हाथ धोकर।

उन्हें बाला का ध्यान आया। उन्होंने अपनी नशीली आँखों से एकबार कमरे को गौर से देखा, फिर वे तवे की भांति लाल होकर गर्जे–"नत्थू ! ओ नत्थू के बच्चे !"

उनकी दहाड़ से रात का शून्य वातावरण काँप उठा। नीरवता में उनकी दहाड़ की प्रतिध्वनि शान्त होते ढोल के स्वर की भाँति सर्वत्र तैर उठी।

"खम्मा अन्नदाता !" – द्वार में प्रवेश करते हुए उस नत्थू ने हाथ जोड़ा, जो कुछ देर पहले ठाकुर की धज्जियाँ उखेड़ने के मंसूबे बाँध रहा था।

"अन्नदाता के बच्चे ! बाला कहाँ है ?"

"अपनी कोठरी में !"

"क्यों ?....वह यहाँ क्यों नहीं आई ?" – नत्थू संकट में पड़ गया। यदि वह कहता है कि उसने उसे नहीं कहा तो ठाकुर सा उसकी बुद्धि ठिकाने लगा देंगे और यदि उसने यह कहा कि वह खुद नहीं आई तो ये अन्नदाता गीली बेंत से उसकी चमड़ी ही उधेड़ देंगे। अतः उसने सत्य भाषण किया –"मैं....,मैं उसे कहना भूल गया ठाकुर सा !"

"तू उसे कहना ही भूल गया।" – भूखे बाज की भांति ठाकुर सा नत्थू की ओर बढ़े। समीप पड़ी लकड़ी को उठाकर पीठ पर भरपूर प्रहार करते हुए गर्जे –"नालायक कहीं का, ठोकर से कलेजा निकाल दूंगा।" – और नत्थू काँपता हुआ करुणा से विलाप कर रहा था, गिड़-गिड़ा रहा था।

"जा बे कमीने ! ले आ अपनी उस माँ को, इस बार भूल गया तो बत्तीसी० तोड़ दूंगा।"

नत्थू रोता हुआ बाला की कोठरी के सामने आया। डरते डरते उसमें घुसा। मस्ती से सोई बाला को देखकर उसका हृदय एक पल

०बतीस दाँत।

के लिये तड़प उठा –"हे भगवान ! मुझे तो तू मौत ही दे दे।" – और उसने काँपते हाथों से बाला को जगाया। बाला अंधेरे में किसी का स्पर्श पाकर चौंक उठी –"कौन है ?"

"मैं, बाला, मैं नत्थू !"

"क्या मैं मैं करता है ? मुझे बहुत मीठी नींद आ रही थी।" –बाला ने नत्थू को फटकारा।

".....!" नत्थू जोर से सिसक पड़ा। उसकी सिसकियाँ सुनकर बाला सावधान हो गई –"क्या बात है नत्थू ?"

नत्थू सिसकता हुआ बोला –"ठाकुर सा ने आज तुम्हें बुलाया था।"

"मुझे बुलाया था ?"

"हाँ !" – गर्दन हिलाकर नत्थू ने कहा।

"तूमने मुझे कहा क्यों नहीं ?"

"मैं,.....?" – कहता कहता नत्थू बाला को देखने लगा। उसकी व्यथा भरी पलकों से आँसू टपक पड़े। जैसे ये आँसू कह रहे हैं –"बाला मैं तुम्हें किस मुंह ऐसी नीच बात सदा-सदा कहूँ ?"

अपने हृदयकी भावना का पूर्ण रूप से शोषण किया नत्थू ने –"बातों ही बातों में मैं भूल गया था।"

"भूल की सजा का अन्दाजा है ?" –यह तो एक ही लकड़ी की चोट पड़ी है, वर्ना ठाकुर सा तुम्हें अधमरा करके ही दम लेते।" – आँखों में अंगारे से जल उठे थे बाला की –"तू ऐसी भूल कभी भी मत किया कर नत्थू ! नहीं तो एक दिन ठाकुर सा तेरी जान निकाल देंगे....जान.. निकाल देंगे.....जा.....न.....।" –पागल की भाँति बड़बड़ाती बाला डेरे के भीतर चली गई।

नत्थू प्रस्तर की प्रतिमा-सा बना उस जाती हुई लाचार आत्मा को देखता रहा और फिर फफक पड़ा।

नत्थू के कदम अपनी कोठरी की ओर बढ़े। कोठरी के दीये को जला कर वह खटिया पर बैठा। उसने दीया क्यों जलाया, वह स्वयं नहीं समझ सका। फूंक मार कर उसने पुनः दीये को बुझा दिया पर उसे नींद नहीं आई। लाख प्रयत्न करने पर भी उसकी भारी पलकें बन्द न हुई। बन्द भी होती तो एकाएक खुल जाती जैसे उसके मानस पर रह रह कर आघात होते हैं।

जब रात अपनी तारों भरी चुनरी को उतार कर प्राची के अंक में निद्रा के लिये गई तो करवटे बदलते नत्थू ने एक दीर्घ जम्हाई ली।

प्रभात हो गया था।

उसका बढ़ता हुआ आलोक सृष्टि पर शनैः शनैः आच्छादित होने लग गया था।

कृषक लोग अपने अपने कार्यों में संलग्न होने के लिये तत्पर हो गये थे। वातावरण में गति का संचार होने लग गया था।

अभी तक नत्थू जागरण की थकान को नहीं भूला था। क्लान्त-सा निश्चल बैठा-बैठा न जाने क्या सोच रहा था कि उसकी विचारधारा के तारतम्य को बाला ने भंग किया –"नत्थू ! चाहे कुछ भी हो, पर अब मैं यहाँ घड़ी भर भी नहीं रहूंगी। ऐसे जीवन से तो डूबकर मर जाना ही अच्छा है।"

".....।" – नत्थू निरुत्तर रहा।

"मैं सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि जरूर डूब मरूँगी।"

नत्थू ने उसे समझाया –"पगली हो गई हो क्या ? डूब मरने से क्या होगा ? तू ही इस संसार से जायेगी, ठाकुर सा का क्या बिगड़ेगा, एक नई गोली और पकड़ लायेंगे।"

"लाते रहें, मुझे चिन्ता नहीं, मेरा तो पिण्ड छूट जायेगा, मुझे तो मुक्ति मिल जायेगी।"

"ले यह कम्बल और यहाँ ओढ़ कर सो जा, मैं काम करने जाता हूँ।"

– नत्थू अपनी कम्बल देकर उठा। पहनी हुई रूई की बगलबन्दी को ठीक करके सिर पर जीर्ण शीर्ण साफा बाँधने लगा। बाला खटिया पर बैठती हुई भड़क पड़ी–"नत्थू ! मैं कोई कुतिया तो नहीं हूँ, औरत जात हूँ, दुख मुझे भी होता है।....नत्थू ! मैं आज सचमुच डूब मरूंगी।" –बाला का काँपता हुआ शरीर और अधिक काँपने लगा। प्रकम्पित पलकों में आँसू छलछला आये। रोष तो जैसे उसके अंग-प्रत्यंग में समा गया हो।

"मैं जानता हूँ बाला, पर भगवान ने हमें इतना निर्बल बना दिया है कि हम इस ठाकुर का कुछ बिगाड़ भी नहीं सकते। मैं भी सोचता हूँ कि इस ठाकुर को दो हाथ बताऊँ,पर उसके सामने आते ही मेरी छक्कड़ी क्यों गुम हो जाती है, समझ नहीं सकता।"

इतना कहकर नत्थू बुझती हुई अंगीठी की आग में थेपड़ियाँ० डाल कर फूंक मारने लगा। आग जल उठी। –उसकी तपिश से समस्त कोठरी में गर्मी छा गई थी।

"अपना अन्नदाता है न, हम उसका नमक खाते हैं, तभी तो हम उसके सामने कुछ बोल नहीं सकते।" स्थिर दृष्टि से बाला ने नत्थू को देखा और नत्थू बाला के कन्धों को अपने हाथों से पकड़ कर अपनेपन से बोला –"बाला ! आज तू बहुत दुखी है ?"

"हाँ !"

"क्यों ?"

"आज मुझे ठाकुर सा ने बहुत सताया। देखो !" – उसने अपने दायें कपोल की ओर संकेत किया–"ये दाँत के निशान....देखो, ये काटने के चिन्ह !" –बाला ने अपनी छाती उघाड़ दी। छाती पर गोल मटोल बत्तीसी का चिन्ह बना हुआ था–बिलकुल लाल लाल।

नत्थू प्राणी की यह पैशाचिकता देखकर सिहर सा गया। दुख से अतिरेक होकर उसने बाला को अपने सीने से चिपका लिया, जैसे वह बाला

०गोबर का ईंधन।

को अपनी आत्मीयता से धैर्य प्रदान कर रहा हो। बाला के तप्त अश्रु नत्थू के कन्धे पर ढलक रहे थे और नत्थू की आँखों का खून बाला के कन्धों पर अपना निशान छोड़ रहा था।

सहसा किवाड़ खुले।

दोनों चौंक कर इस तरह विलग हुए जैसे दोनों दुनियाँ से छिपकर प्रेमालिंगन कर रहे हैं, पाप कर रहे हैं। अपराधियों की भाँति दोनों अपनी अपनी गर्दन झुकाये खड़े रहे।

सामने खड़े थे राजपूत जसवन्त सिंह जी !

अपनी आन पर झौपड़ी की आँच लिपटते देखकर वे भड़क उठे। उनका खून खौल उठा। क्रोध से अपने होठों को काटते हुए तड़प उठे –"कमीने ! तेरा यह साहस ?"

".....!" – दोनों मौन रहे।

"मैं पूछता हूँ कि क्या कुकर्म चल रहा था ?"

"माई बाप ! कुछ नहीं,..... कुछ नहीं, कुछ.....!"–झपटकर नत्थू ने ठाकुर सा के दोनों पावों को अपने दोनों हाथों से पकड़ लिया और अपनी निर्दोषता के प्रमाण के लिये जल विहीन मछली की भाँति तड़पने लगा।

"गले से लिपट कर,....चाण्डाल !" – एक जोर से लात मारी ठाकुर सा ने –"तुम्हें लज्जा नहीं आती। हमारी ध्वजा के नीचे ऐसा पाप ! मार मार कर हड्डी पँसली एक कर दूंगा।"

ठाकुर सा ने उसे जोर जोर से पीटना प्रारम्भ किया। उसका करुण रुदन सुन कर अणचा, लधिया और पोतकी भी आ गये। पशु की तरह नत्थू को पीटते देखकर बाला से नहीं रहा गया। झपटकर उसने नत्थू को सहारा दिया –"नहीं, अन्नदाता नहीं, यह कुछ भी नहीं कर रहा था, इसको मत मारिये।"

ठाकुर सा ने अणचा और लधिये को सम्बोधित करके कहा –"देखो !

इस खानगी रॉड० को,गले से गला मिलाकर पड़ी थी और बनती है सीता संतवंती+ ठोकरों से कलेजा निकाल दूंगा, कोई गोले का जन्मा नहीं हूँ, राजपूत का बच्चा हूँ, हमारे सामने आँखें उठाने वाले की हम आँखें निकाल लेते हैं ।"

नत्थू को पकड़ कर ठाकुर सा ने उसे जमीन पर पटक दिया और जोर जोर से लातों द्वारा पीटने लगे । नत्थू चिंघाड़ रहा था –"खम्मा माई बाप, खम्मा अन्नदाता, मैं आपकी गाय हूँ, मुझे छोड़ दीजिये, ओह ! मरा ठाकुर सा, बस, बस, अन्नदाता !" – जोर से रोने लगा नत्थू !

अणचा ठाकुर सा को प्रसन्न करने का मौका पाकर घृणा से बोली– "मैंने भी इसे एक दो बार मना किया था कि इस चुड़ैल के पास मत जा, पर यह नहीं माना, जाता था दौड़ दौड़कर इसके पास और यह भी नयना मटका मटका कर बातें करती थी, खाना खिलाती थी,इसके सामने आडी पाटीx निकाल करके चटकती-मटकती थी ।"

"अब मटकेगी तो देख लूंगा । इसके सारे नखरे भुला दूंगा ।" – ठाकुर सा ने नत्थू को ठोकर मार कर कहा – "उठ कम्बख्त ! और चला जा सीधे खेत में । कल से खेत की पाल छोड़कर इधर आ गया तो तलवार से टुकड़े टुकड़े कर दूंगा ।"

तब ठाकुर सा ने नत्थू की पीठ पर अन्तिम मुक्का जमाया । नत्थू अपने साफे से अपने आँसुओं को पोंछ रहा था । बाला की आँखों से ओझल होते होते एक बार करुणाभरी दृष्टि से बाला को देखा–बाला की आँखों में सावन उघड़ा हुआ था । उन सावन की बूंदों में उन दोनों गुलामों की विवशता चमक रही थी ।

"अब तू बोल छिनाल, क्या कर रही थी अपने बाप के संग ?" –ठाकुर सा बाला की ओर लपके । बाला निश्चल खड़ी थी –"गली की

०वेश्या, +सत्यवती, xबालों को अच्छे ढंग से बनाना ।

कुतिया है न, नरक में ही मुंह डालेगी। जानती नहीं, तू ठाकुर जसवन्त सिंहजी की गोली है, और उनकी गोली एक छदाम के आदमी के साथ...? .....बोल, करेगी ऐसे काम ?"

".....।" –बाला चुप रही।

"अरी छिनाल, तेरे मुंह में जीभ है या नहीं ?"

वही मूकता।

"तू ऐसे थोड़े ही मानेगी।" – इतना कहकर ठाकुर सा ने उसके दोनों तरल कपोलों पर थप्पड़ मारने प्रारम्भ कर दिये। थप्पड़ें खाकर भी बाला नहीं बोली – काँपती हुई मूक क्रन्दन करती रही।

"तेरे इतना क्या हठ है ? बता क्यों नहीं देती ?" – अणचा ने अपनत्व के साथ परामर्श दिया।

"क्या बताऊं अणचा ? कुछ किया हो तो बताऊं भी, उसने मेरी छाती पर बनी बत्तीसी को देखकर, दुख से भर कर मुझे गले से लगा लिया तो, आकाश जमीन में धँस गया और अन्नदाता हमेशा मेरा धर्म बिगाड़ते रहते हैं, उस समय मेरा कुछ भी नहीं बिगड़ता ?" – बाला के तप्त स्वर की तीव्रता क्रमशः बढ़ती गई। ठाकुर सा अपने विरुद्ध इस वाणी को सुनकर आगबबूला हो उठे। मूंछों पर ताव देते हुए उन्होंने एक चाँटा बाला के गाल पर मारा –"जबान चलाती है राँड, गर्दन काट कर रख दूंगा।"

"रख दीजिये, कहते क्यों हैं ?" – बाला और आगे बढ़ी। अणचा ने बीच बचाव करना प्रारम्भ किया। ठाकुर सा ने अणचा को धक्का देते हुए कहा –"हट जा अणचा, आज मुझे इसके होश ठिकाने लाने दे।" और ठाकुर सा ने भरपूर मुक्का बाला की पँसलियों पर दे मारा। बाला गश खाकर अचेत हो गई। अणचा ने बाला को संभालना चाहा तो ठाकुर ने उसको डाँटा –"किसी ने उसको छू भी लिया तो उसका कलेजा ठोकर से बाहर निकाल दूंगा।"

अणचा ठाकुर सा की यह निर्दयता देखकर हतप्रभ हो गई। आँखों में ही बोल उठी –"खुद धर्म बिगाड़े तो कुछ नहीं और दूसरे पर सन्देह भी हो जाये तो इनकी आन-शान जाने लगती है।".....उसने दीर्घ साँस लेकर मन ही मन कहा –"वाह भगवान ! तेरी लीला का पार पाना बहुत कठिन है।"

तभी आई पोतकी।

उसकी मुद्रा को देखकर पता लगता था जैसे बावन रूप ने तीन ही कदमों में तीनों लोक नाप कर जो प्रसन्नता प्राप्त की थी, उसके विपरीत उतना ही दुख, समस्त संसृति की वेदना उसके अन्तराल में सन्निहित है।

ठाकुर सा उसे देखकर चलने को उद्यत हुए।

अणचा भी खिसक गई।

लधिया के कदम भी बढ़े।

उसने बिना शब्द बोले बाला को अपने हाथों पर उठाया। ठाकुर सा का सम्मान चीख उठा। तनिक बोलने के लिए उन्होंने अपने होठों को हिलाया ही था कि पोतकी की आँखें उनसे टकरा गईं। ठाकुर सा फिर नहीं बोल सके। चलते बने।

पोतकी अपनी कोठरी में बाला को ले आई। खटिया पर संभाल करके सुलाया। सुलाने के बाद वह कितनी ही देर तक जड़वत्-सी बाला को देखती रही। देखते देखते उसके नेत्रों में मोती छलक आये।

तब उसने बाला का उपचार करना प्रारम्भ किया। पानी के छींटे उसके मुंह पर पड़ते ही बाला ने भय से आँखें खोली। उसके अधर अस्पष्ट स्वर में तड़प उठे –"नहीं, नहीं, ठाकुर सा ! उसने कुछ नहीं किया, मैं सच कहती हूं, उसने कुछ नहीं किया।" –और वह पुनः अचेत हो गई।

पोतकी वहाँ से उठी और घी की कुप्पी से हथेली में घी लेकर आई। उसकी पँसली को मसलने लगी तो भी उसे होश नहीं आ रहा था।

सवेरे से संध्या तक तेल मसलने पर गगन के प्रथम दो तारों के चमकने के साथ बाला ने अपने बन्द नेत्र खोले। उसकी आँखें अब भी आँसुओं से परिपूर्ण थीं। हृदय फट जाने को था। रुदन के साथ बोली –"माँ माँ, तू ने मुझे पैदा ही क्यों किया।" –भाव विह्वल बाला की चेतना लुप्त हो गई थी। उसका वर्तमान विस्मृति के गर्भ में विलीन हो गया था। माँ की स्मृति दुख की पराकाष्ठा पर सजग हो गई थी, उसकी आत्मा के तार तार को झँकृत कर रही थी। आज उसे माँ याद आ गई थी, अपनी माँ !

पर पोतकी की आयु भी बाला की माँ के समान ही थी। उसने भी तपाक से बाला को अपनी बाहुओं में भर लिया। छाती से लगा कर उसके सारे बदन को सहलाने लगी। उसे चूमने लगी।

"पोतकी ! तू कितनी चोखी है ?"

"रो मत बाला, रोने से तेरा दुख नहीं मिटेगा, भगवान से अरदासना कर, वही तेरा दुख हर सकता है।"

"भगवान !" – बाला की आँखें वक्र हो गईं। आँखों की वक्रता कह रही थी –"बाला कोई भयानक काम करने जा रही है।"

पोतकी ने उसे समझाया –"गुस्से में बुद्धि जड़ हो जाती है, तू कोठरी में जाकर सो जा, सोने से तुम्हें खूब आराम मिलेगा।"

बाला वहाँ से अपनी कोठरी में चली आई।

रात आधी से अधिक व्यतीत हो चुकी थी।

बाला ने अपनी कोठरी में से इधर उधर ताका। चारों ओर सन्नाटा था, मृत्यु-सा निःशब्द भयंकर सन्नाटा।

वह उठी और तालाब की ओर बढ़ी।

मन में उसने रोते रोते सोचा–"मरने के पहले नत्थू से तो मिल लूं ?" –पर नत्थू उसे बाद में कैसे मरने देगा, यह निश्चय था ? अतः वह सीधी तालाब के घाट पर गई और धड़ाम से कूद पड़ी।

रात चली गई ।

उसका अन्धकार भाग गया ।

प्रभात आया और प्रभात का आलोक ।

उस आलोक के साथ सारे गाँव में आतंक भरा हाहाकार मच गया–"मर गई, बेचारी डूब कर मर गई ।"

लधिये ने आकर चौपाल में दांतुन करते हुए ठाकुर सा को दुख के साथ कहा –"सुना ठाकुर सा ! बाला आज तालाब में डूब मरी है। उसकी लाश फूल कर पानी पर तैर रही थी ।"

"तो ढोल बजाऊं ? हम तो अपने पुत्रों के मरने के समाचार भी सुन कर तेरी तरह मुंह नहीं उतारते ! तभी तो कहता हूं–राजपूत आखिर राजपूत ही है । ...हाँ, उसे श्मशान में जाकर जला आओ ।" – इतना कहकर वे पुनः दांतुन करने लगे ।

"और आप ?" –लधिया कहता कहता चुप हो गया । लेकिन उसके नयनों के भावों ने पूछ ही लिया –"आप नहीं चलेंगे ?"

"हम, हम ऐसी दुराचारिणी को देखना भी नहीं चाहते ।" –ठाकुर सा ने घृणा से मुंह घुमाया–"ऐरा गैरा नत्थू खैरा मरेगा तो हम थोड़े ही जलाने जायेंगे, ऐसा करेंगे तो हमारी मर्यादा नहीं चली जायेगी ?.... तुम लोग चले जाओ ।"

लधिया चला गया ।

ठाकुर पुनः दांतुन करने लगे ।

श्मशान में जब बाला का शव लाया गया तो नत्थू फूट फूट कर रो पड़ा । लधिये ने उसे समझाया –"तेरे आने की बातें ठाकुर सा के कानों में पड़ गई तो जिंदा जमीन में गड़वा देंगे ।"

"मैं एक बार बाला का मुंह देखना चाहता हूँ ।"

"लो देख लो !"–कफन को लधिया ने बाला के मुंह पर से हटाया । नत्थू ने रोते रोते अपने काँपते हाथों को बाला के मुंह पर फेरा । अन-

जाने में नाक पर जरा जोर से झटका लग गया। नाक की चमड़ी यथावत स्थान से हट गई। कोई बोल उठा –"लाश गल गई है ?"

नत्थू जोर से रो उठा और रोता रोता खेत की पाल की परिधि में प्रविष्ठ हो गया।

चित्ता जली।

आग की लपटों ने अपनी लपलपाती ज्वालाओं को भड़काया।

एक बार सबके नयन तरल हो गये पर पोतकी के नहीं। वह तो जड़वत स्थिर दृष्टि किये बैठी रही, गति-हीन सी।

धीरे धीरे पोतकी के नयनों में विचित्र सा परिवर्तन आने लगा। अणचा ने लधिये से कहा –"देखो, पोतकी की दशा कैसी हो रही है ?"

"मालूम नहीं।" – लधिये ने आकुलता से कहा।

तभी पोतकी जोर के साथ चीख उठी –"जला दो, जला दो, मुझे भी जला दो।" – कहती कहती पोतकी चित्ता की ओर बढ़ी।

लोगों ने उसे पकड़ा। पर वह अपने बालों को खींच खींच कर कर्कश स्वर में चीखें मारने लगी–"छोड़ दो, छोड़ दो मुझे, मैं मरूँगी, मुझे जलने दो।"

एक वृद्ध ने कहा –"इसका चित्त उठ गया है, यह पागल हो गई है।" –लधिया और अणचा एक साथ कह उठे –"पागल !"

श्मशान की आग ठंडी हो गई :

४

एक महीना बीत गया।

प्राची वाली खिड़की से धूप पूर्ण प्रभाव से बैठकखाने में अवतरित होने लग गई थी।

ठाकुर सा ने अपनी ओढ़ी कम्बल को उतार करके एक कोने में रख दिया। तभी लधिया हुक्का लेकर आया और आकर बोला –"सुना ठाकुर सा ! आपकी 'झंझट' खत्म हो गई।"

"कौन सी झंझट ?" – हुक्के की नली को मुंह में लेते हुए ठाकुर सा ने टेढ़ी गर्दन करके कहा।

"आज रात से पोतकी का पता नहीं है।"

"कहाँ चली गई ?"

"पागल तो थी ही, कहीं भाग गई होगी।"

"कहीं सर्दी से अकड़कर जंगल में मर तो नहीं गई है ?"

"पता नहीं।"

"देखो, कहीं ढूढ़ने से लाश मिल जाये तो क्रिया कर्म कर देना,नहीं तो जैसी उसकी करनी; उसके भाग्य में ऐसे ही मरना लिखा था।"

लधिये ने नतमस्तक करके प्रणाम किया और चल पड़ा।

ठाकुर सा का हुक्का फिर गुड़गुड़ करने लगा।

अभी दस पल भी नहीं बीते थे कि अणचा ने झपट कर बैठकखाने में प्रवेश किया –"अन्नदाता !...अन्नदाता !! ठकुराइन सा के पीड़ा बहुत हो रही है।"

ठाकुर सा ने अणचा की बात को सुनकर पलकों को झेंपा कर शब्दों को दोहराया – "पीड़ा होने लग गई है।"–और उचककर डाँटा अणचा को–"तू खड़ी खड़ी मेरा मुंह क्या देख रही है, जाकर दाई को बुला क्यों नहीं लाती ?"

अणचा बिना उत्तर दिये ही जिस पाँव आई थी,उसी पाँव लौट गई।

ठाकुर सा व्याकुलता से बैठकखाने में चहलकदमी करने लगे। उन्होंने खिड़की से खेतों की ओर निहारा। कटे हुए खेतों के डंठल उन्हें हरी हरी झूमती हुई बालों से जान पड़े। उन सभी बालों में उन्हें आशा

का महकता सौरभ उठता हुआ प्रतीत हुआ जो चंद क्षणों के पश्चात ठाकुर सा के डेरे में बधाई के रूप में प्रकट होगा।

ठाकुर सा बेटे की सुखद कल्पना से उल्लसित होकर मुस्करा उठे। दायां हाथ अन्तर के अभिमान की आज्ञा पाकर मूंछों पर ताव देने लगा। दो बार ठाकुर सा ने मूंछों पर ताव दिया–गंभीरता से अकड़ कर। फिर मुस्कराये और मुस्करा कर अपने ही दंभ की अति में तड़पने लगे।

तभी आ गया लधिया –"अन्नदाता ! पोतकी की लाश तो कहीं नहीं मिली।"

अपने घुटे हुए दंभ को बाहर निकालते हुए ठाकुर सा ने कहा –"नहीं मिलती है तो भाड़ में जाने दे। हम क्या करें ?"

ठाकुर सा ने उसे बैठने का संकेत किया। लधिये के बैठते ही ठाकुर सा ने अकड़ कर पूछा–"बताओ लधिया,ठकुराइन के क्या होगा ?"

"अन्नदाता ! यह भी कोई पूछने की बात है ? आपके बेटा ही होगा, यह में कहता हूँ।" – लधिया ने छाती ठोंककर उत्तर दिया। ठाकुर सा की मुखाकृति पर प्रसन्नता का उन्माद छा गया।

"लधिया, तू तो जानता है कि यदि हमारे बेटी हो गई तो हमें भी अपने पूर्वजों की परम्परा के अनुसार राजा कंस का काम करना पड़ेगा। हम राजपूत हैं, ऐसे राजपूत जिसकी गर्दन कट सकती है पर झुकती नहीं और बेटी के बाप को निश्चय ही गर्दन झुकानी पड़ती है।"–कहते-कहते ठाकुर सा की आँखों में पश्चाताप उभर आया। वे किसी विचार में खो गये। लधिया के चेहरे पर भी कृत्रिम उदासी धावित हो गई। अंगुलियों से बैठकखाने की फर्श पर अदृश्य चित्र अंकित करने लगा।

"देख तो लधिया,यदि अणचा दाई को नहीं बुला लाई है तो, तू जाकर जल्दी से बुला ला।"

"हुक्म अन्नदाता !" – लधिया द्रुत गति से बाहर हो गया।

ठाकुर सा की बेचैनी बढ़ने लगी। बेचैनी के बढ़ने के साथ साथ

उनकी चहलकदमी भी बढ़ती गई। विचारों की दौड़ तो मस्तिष्क में इतनी तेज हो गई थी, कि ठाकुर सा संभाल नहीं पा रहे थे कि कौन से विचार को मैं गौण समझलूं।

पर एक बात का उन्होंने निर्णय सा कर लिया था कि यदि उनके पुत्र हुआ तो ऊम्बले जाट वाले खेतों को हम दखल करके उसके लिये एक सुन्दर कोठी बनवायेंगे चाहे ऊम्बला कितना भी विरोध क्यों न करे ?

तब ठाकुर सा की आँखों के सामने ऊम्बले का पहलवानी शरीर चित्र की भाँति घूम गया। आज से एक साल पूर्व जब ठाकुर सा ने ऊम्बले की गाय पर अपना अधिकार कर लिया था तो उसने गाँव के तमाम पंचों को आमन्त्रित किया था। उन पंचों को रामायण और गीता की सौगन्ध दिला कर पूछा था, "यदि राजा रैयत के साथ अनीति का काम करे, तो क्या रैयत को उस अनीति को सह लेना चाहिये ?

तब तमाम जाटों ने कहा था–"नहीं।"

"क्यों नहीं ?"–पं. हरिकृष्ण बोलेथे–"राजा क्षुद्र प्राणी नहीं होता, परमेश्वर का पुत्र होता है, अपना पिता होता है, जानते हो, गुरू और पिता की आज्ञा को न मानने वाला प्राणी नरकलोक का भागी होता है, विधर्मी होता है, वर्णशंकर होता है।"

"आपका कहना ठीक है पर अन्यायी चाहे बाप भी क्यों न हो, उसे दंड मिलना ही चाहिये।" – एक जाट नवयुवक दहाड़ा था।

"कौन कहता है ?" – पंडित हरिकृष्ण ने पूछा था।

"गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है।" – पंच अलगू राम हठात बोला था।

हरिकृष्ण इस उत्तर से सकपका गये थे। बात का रुख बदलते हुए बोले थे–"मैंने तो यही कहा है जो शास्त्रों में लिखा हुआ है कि राजा की भमि पर रहने वाली सारी वस्तुओं पर राजा का अधिकार होता है। वह जिसे चाहे ले सकता है जिसे चाहे दे सकता है। हमारा और तुम्हारा

कोई अस्तित्व नहीं है। फिर तुम लोग जो करना चाहो करो, मैं नहीं जानता.....ठाकुर सा का गुस्सा तुम लोग जानते ही हो।" – हरिकृष्ण ने जाते जाते यह धमकी और दी थी।

"ठाकुर सा का गुस्सा !" – इस अर्धवाक्य का भय सारी पंचायत पर आतंक सा छा गया था। सब एक दूसरे का मुंह ताकने लगे थे।

ऊम्बले ने कहा था – "सारी बिरादरी जानती है कि यह गाय सारे गाँव की सबसे अधिक दूध देने वाली गाय है। मैंने इसको अपने बच्चे की तरह पाला-पोसा है। यदि इसी प्रकार की धींगा-धींगी ठाकुर लोग चलाते रहे, तो एक दिन हमारे घर बार भी इसी प्रकार छीन लिये जायेंगे।"

"तो फिर क्या किया जाये ?" –पंच नंदलाल ने कहा था।

ऊम्बले ने उत्तर दिया था–"मैं क्या जानूं ! मुझे जो फैसला पंचायत सुनायेगी, मैं उसे मानूंगा।"

अलगूराम ने तब उठकर गंभीरता से कहा था–"पंचों का फैसला धर्म के अनुसार ही होगा। वे अन्याय नहीं कर सकते। ऊम्बला यदि खुद चाहे तो अपनी गाय ठाकुर सा को दे सकता है, ठाकुर सा का उस पर कोई अधिकार नहीं है।"

पंचायत के पंच-परमेश्वरों ने भी अपनी स्वीकृति ऐसी ही दी थी।

हवा की भाँति ठाकुर सा के कानों में पंचायत के फैसले का समाचार पहुँचा था। पहले तो उन्होंने सोचा कि तलवार से इन नालायकों का सिर उतार कर रख दूं पर इससे वातावरण के विशेष दूषित होने की संभावना समझकर उन्होंने तुरंत अपने एक गोले के साथ पंचों को अपने डेरे पर बुलाया था। अज्ञात आशंका से भयभीत पंच मन ही मन पश्चाताप कर रहे थे कि उन्होंने ठाकुर सा के विरुद्ध क्यों फैसला दिया? यह फैसला नहीं,उनकी सर्वथा भूल है, सागर में रहकर मगरमच्छ से बैर कैसे रखा जा सकता है ?

भीगी बिल्ली की भाँति पंच बैठकखाने में बैठे थे। ठाकुर सा ने

मूंछों पर ताव देते हुए भीतर प्रविष्ट किया था। तब पंचों का सम्मिलित स्वर गूंज पड़ा था – "घणी घणी खम्मा अन्नदाता ने।"

ठाकुर सा के उठे हुए हाथ का आशीर्वाद पाकर सारे पंच पुनः बैठ गये थे। ठाकुर सा ने कहा था–"मैंने आप लोगों के फैसले को सुना...।"

"नहीं, नहीं, वह तो हमने न्याय के साथ फैसला नहीं किया!" – नंदलाल ने हकलाते हुए कहा था।

"क्यों नहीं किया ?"

"ऊम्बले की दशा देखकर दया आ गई थी माई-बाप।" – द्वारका गिड़गिड़ाया था।

"सब मुंह देखी बातें कहते हैं ?" – ठाकुर सा ने गरजकर दीवार पर टँगी तलवार की ओर देखकर कहा था–"धर्म की टाँग-पूंछ कोई भी नहीं जानता और बन बैठा है पंच।....तो भी हम पंचों को परमेश्वर मानते हैं और पंचायत को भगवान का न्यायालय, सो हमें उनका फैसला हृदय से स्वीकार है।"

सब पंच एक दूसरे का मुंह देखने लगे थे। ठाकुर सा तीर की भांति बैठकखाने से बाहर निकल गये थे। पंचों की गर्दनें पल भर के लिए अकड़ गई थीं। सबने एक दूसरे को इस दृष्टि से देखा–जैसे वे कह रहे हैं – 'देखा हमारा फैसला, ठाकुर सा तक मानते हैं।'

उसके ठीक दसवें रोज ऊम्बले की गाय की चोरी हो गई थी। किसने चोरी की, इसका पता आजतक नहीं लगा, पर प्रजावत्सल ठाकुर सा ने अपने आदमियों को गाय का पता लगाने के लिए अवश्य भेजा था!

अतीत की इस घटना को याद कर ठाकुर सा धीरे-धीरे अस्पष्ट शब्दों में बड़बड़ाये –"गाय देना नहीं चाहता था, कमीना कहींका, देखी हमारी हाथ की सफाई, साँप भी मर गया और लाठी भी नहीं टूटी।"

"अन्नदाता !" – अणचा ने तेजी से प्रवेश करते हुए पुकारा।

"क्या है ?"

"अन्नदाता....!" – अवाक् सी देखती देखती अणचा चुप हो गई।

"क्या बात है अणचा ?" – शंकाकुल हो उठे ठाकुर सा।

"माई-बाप...?"

"माई-बाप की बच्ची बोलती क्यों नहीं ?"

"अन्नदाता ठकुराइन सा.....!"

"हैं, लधिया ?" – ठाकुर सा ने जोर से पुकारा। लधिये ने तुरन्त प्रवेश किया – "खम्मा अन्नदाता !"

"जा देख तो, ठाकुराइन सा के क्या हुआ है ?"

"हुक्म अन्नदाता !" – लधिया चला गया।

तब अणचा सावधान होती हुई बोली – "अन्नदाता ! आपके बेटी हुई है।"

"बेटी !"– विस्फारित नेत्र हो गये ठाकुर सा के –"क्या बकती है ?"

"मैं ठीक कहती हूँ माई-बाप !" – काँपते हुए अणचा ने कहा।

"ओफ !"– ठाकुर सा की आँखों के आगे अन्धेरा छाने लगा। उन्हें महसूस हुआ कि सारा बैठकखाना घूम रहा है और घूम रहा है यह चराचर।

दस क्षण तक ठाकुर सा अपने दोनों हाथों से अपने सिर को पकड़े बैठे रहे। बैठकखाने में मृत्यु सी मूकता छा गई।

धीरे धीरे ठाकुर सा ने अपने श्वेदकणों से सज्जित मुख को उठाया। अणचा को पथराई हुई आँखों से देखा – "अणचा ! इसका पता किसी को भी न हो कि हमारे बेटी हुई है।"

"हुक्म अन्नदाता !" – अणचा कुशल क्षेम की मन ही मन प्रार्थना करती हुई बाहर चली गई।

उस दिन ठाकुर सा ने न खाया और न पीया।

बेचैन टहलते रहे बैठकखाने में।

इसके बाद डेरे के प्रत्येक सदस्य ने देखा कि हमारे स्वामी किसी

गहरे दुख से पीड़ित गुमसुम रहते हैं। न उन्हें खाने की सुधि है और न उन्हें रहने का ध्यान है। किसी से एक शब्द भी नहीं बोलते हैं।

उनकी गतिविधि से स्पष्ट मालूम होता था कि ठाकुर सा किसी गंभीर जटिल-समस्या में उलझे हुए हैं और उसके निदान हेतु ही वे इतने खोये खोये से रहते हैं।

सात दिन यूं ही व्यतीत हो गये।

आठवें रोज ठाकुर सा रात के काले स्याह अन्धेरे में ठकुराइन के प्रसव-गृह की ओर लपके।

ठकुराइन के प्रसव-गृह में दीया टिमटिमा रहा था।

प्रसूता अपनी मृदुल कलिका सी बच्ची को अपने स्तनों का दुग्ध-पान करा रही थी – खटिया पर अर्द्धनग्न सी सोई। बच्ची का एक हाथ माँ के स्तन पर था और दूसरा उसके अपने तन पर। माँ पल-पल के बाद कह उठती थी –"बाई सा है क्या ? राजकुँवारी सा है क्या ? सो जा, राजा बेटी सो जा, आप बहुत सयानी है।"

बाहर चाँद अपनी मादक ज्योत्स्ना के साथ जाती हुई सर्दी के प्रभाव को नमकीन बना रहा था। उसकी किरणें सुप्त-प्राणियों की अभिलाषा को परिरंभण की प्रेरणा दे रही थी, आलिंगन के लिये उत्प्रेरित कर रही थी। पवन का हल्का झोंका उस अभिलाषा को उन्मत्तता और उत्तेजना प्रदान कर रहा था। सारा गाँव उस वातावरण में शांत पड़ा था –उनींदा और अलस।

ठाकुर सा ने एक पल किवाड़ की ओट से ठकुराइन को देखा –उसका समुज्ज्वल-सलोना श्वेत मुख एक प्राणी को जन्म देकर विशेष मनोहारी बन गया था। कपोल की रक्ताभ और अधरों का रसीलापन दीये की क्षीण ज्योत्स्ना में चमक सा रहा था।

ठाकुर सा ने मन ही मन कहा – "विचित्र बात है ? हम तो हमेशा से सुनते आये हैं कि बच्चा पैदा होने पर लुगाई का रूप ढल जाता है और

ठकुराइन का जोबन तो और जोर मारने लगा।.....वाह! प्रभु वाह!! तेरी माया भी बड़ी विचित्र है। तू जब किसी को देने लगता है तो उसे कोई नहीं रोक सकता। तेरी आज्ञा से तो मनुष्य यदि मिटटी में भी हाथ डालेगा तो वह भी सोना हो जायेगी।"

प्रसव-गृह में एक हल्की सी दुर्गन्ध आ रही थी। इधर उधर बच्ची के पोतड़े० पड़े थे। एक आले में तेल की कुप्पी रखी हुई थी और खटिया के नीचे भोजन की स्वादिष्ट सामग्री।

ठाकुर सा अल्प काल तक इन सब वस्तुओं पर दृष्टिपात करते रहे, विचारते रहे--प्रसन्न-प्रसन्न।

अप्रत्याशित उनकी दृष्टि अपनी नवजात लड़की पर गई। जैसे घृणा का ज्वालामुखी फूट पड़ा हो,उसी भाँति ठाकुर सा नेत्रों को क्रोध से दीर्घ करके धीमे स्वर में बोले--"यह कम्बख्त कहाँ बैठी हुई थी कि यहाँ मरने को आ गई ? जानती नहीं यह कि तुझ जैसी कुल कलंकिनी को, मान-मर्यादा की मिट्टी पलीद कराने वाली को हम राजपूत उस खाट के पाये के नीचे देकर मार देते हैं जिस खाट पर तू जन्मती है।" – इतना कहकर ठाकुर सा तारा की खाट की ओर लपके। झपटके उन्होंने उस नन्हीं बच्ची को उठाया। नन्हीं कठोर स्पर्श से चीख उठी। माँ का कलेजा धक से रह गया। वह घबड़ा उठी – "कौन !" – ठाकुर सा अंधेरे में हो गये। उनके तन का कोई भी हिस्सा दिखाई नहीं पड़ रहा था।

"हम ! ठकुराइन हम !!"

"आप !" – तारा तुरन्त उठकर ठाकुर सा के पास गई। अपनी बच्ची पर अपने दोनों हाथ फैलाती हुई तड़प उठी –"नहीं, ठाकुर सा मेरी बच्ची को मत मारिये।"

"मत मारिये, क्या बकती हो ठकुराइन सा, आप एक क्षत्राणी होकर ऐसे शब्द निकालती हैं,जो हमारी आन और शान के कलंक बन सकते हैं।"

० बच्चे के मल द्वार पर बाँधने के कपड़े।

"मैं क्षत्राणी जरूर हूँ ठाकुर सा ! उसके साथ एक माँ भी, मैंने इसे नौ माह पेट में रखा है, भला इस तरह मैं कैसे मरने दूं अपनी बच्ची को ?" – तारा के लोचनों में आँसू छलछला आये थे ।

दोनों अन्धेरे से हटकर पुनः दीये के प्रकाश में आ गये थे । उस दीये के मिटते प्रकाश में तारा के मुख पर माँ की वह विकल वेदना थी, जिस वेदना का वर्णन आजतक इसलिये ही अधूरा रहा है कि वैसी पीड़ित माँ ने अपनी लेखनी द्वारा उसको प्रसूत नहीं किया है। उसके अपरिमित दर्द को तो वही जान सकती है ।

"ठकुराइन सा ! नारायण सिंह ने एक जबर्दस्त भूल की जिसका दुष्परिणाम हमें यह मिला कि हमारे २०० ग्रामों की जमींदारी, सैकड़ों रंगरूट, सबके सब नरेश ने अपने अधीन कर लिये । एक छोटे से ग्राम की जमींदारी लिये जो हम जिंदा रहना चाहते हैं, उन्हें आप जीवित नहीं रहने देंगी । जिस दिन भी बराबर के जाति-भाइयों में यह समाचार पहुँच जायेगा कि हमने बेटी को जिंदा रखा है, जानती हैं आप, उस दिन ठाकुर जसवन्त सिंह जी की नाक कट जायेगी ।"

"उस दो अंगुली की नाक के पीछे आप दो हाथ के प्राणी का नाश कर देंगे ?" – ठकुराइन का स्वर तीव्र था ।

"हम अपनी आन और शान के लिये महलों को भी मिटा सकते हैं । ठकुराइन सा ! हमारे पूर्वजों की परम्परा हमारी आन है । हम चाहते हैं कि हम पुनः नरेश की सेवायें करके अपने खोये हुए गाँव प्राप्त कर लें ।"

ठाकुर सा कुछ देर तक मौन रहकर पुनः बोले–"आप नहीं जानती हैं कि इस बच्ची के कारण हमारे कुनबे पर क्या क्या आफतें आ सकती हैं ?"

"तो आप.....?"– ठकुराइन की जबान चुप हो गई पर आँखों के कम्पन ने कह दिया–'तो आप बच्ची को मारने ले जा रहे हैं ?'–और उसने भूखे बाज की भांति झपटकर, अपनी बच्ची को ठाकुर सा से छीन कर

अपनी छाती से लगा लिया। बच्ची जोर से चीख मार कर चुप हो गई। माँ का कलेजा फटने लगा–"नहीं, ठाकुर सा ! आप ऐसा मत करिये, देखिये न, कितनी चोखी और भोली भाली लड़की है, ये गोरे गोरे नन्हें नन्हें हाथ, ये छोटे छोटे पाँव, यह चन्दा सा मुखड़ा।.....ठाकुर सा ! आप मेरा गला दबा दीजिये पर इस गरीब को मत मारिये।"

ठाकुर सा कर्त्तव्यनिष्ठ उस योद्धा की भाँति जड़वत खड़े रहे जिसके समक्ष प्यार प्राचीर बनकर के आ गया है। प्यार उसके हृदय में ममता का प्रादुर्भाव करके उसके कठोर कर्त्तव्य को निरंतर घात-प्रतिघात द्वारा निर्बल बना रहा है, ऐसा प्रतीत हुआ ठाकुर सा को, अतः वे सावधान हुए–"नहीं, ठकुराइन सा ! हम बेटी को पालकर अपना गौरव नहीं बेच सकते। हमारी गर्दन आजतक किसी भी अपने बराबरी के जाति भाई के समक्ष नहीं झुकी है, भला अब कैसे झुक सकती है ?"

"पर मैं अपनी बच्ची को नहीं दूंगी।"

"आप क्या ? आपकी छाया को देना होगा।" – ठाकुर सा आगे बढ़े। ठकुराइन द्वार की ओर बढ़ी। ठाकुर सा उसके कंधे को पकड़ कर क्रोध से उबल पड़े –"ऐ बच्ची की सच्ची माँ, तू इसको चुपचाप देगी या इधर उधर की खायेगी। हमने अपनी आन-शान के लिये अपने बड़े भाई सा का अपनी आँखों के सामने सर्वनाश कर दिया और आप इस छोकरी के लिये हमें अपने आन से गिरा रही हैं !.....छोड़ इस डायन को।"

"नहीं !" – ठकुराइन ने चीखा।

"चीखो मत ठकुराइन, हमारी प्रतिज्ञायें कच्चा धागा नहीं होतीं, जो हाथ लगने से टूट जायें।"

"आप आदमी हैं या राक्षस ?"

"राक्षस !" – ठाकुर सा उस पर झपटे और बच्ची को हाथ में लेकर द्वार की ओर बढ़े।

"नहीं, ठाकुर सा, भगवान के लिये छोड़ दो, यह गाय है आपकी ठाकुर सा !" – निढाल सी होकर ठकुराइन जमीन से अपना सिर फोड़ रही थीं – "यह मेरे कलेजे की कोर है ठाकुर सा, इसे मत मारिये, ठाकुर सा, इसे मत मारिये।" – पर ठाकुर सा एक जोर की ठोकर ठकुराइन को मार कर बाहर निकल गये ।

ठकुराइन चीखती रही। उसकी चीखें, व्यथा भरी, आग सी जलती हुई चीखें, ठाकुर सा के कर्ण कुहरों द्वारा आत्मा की गहराइयों में डूबती जा रही थी जैसे माँ की तड़पती हुई ये चीखें उस तथाकथित आन-शान वाले राजपूत के रोम-रोम में बसकर उसके सारे तन में पीड़ा के छाले उत्पन्न कर देगी। उसके उन पाँवों को हिला देगी जिनमें लगा हुआ है– लाल लाल रैयत का खून ! मानवता का खून !

ठाकुर सा के खूनी पाँव बढ़ रहे थे–रात के अंधेरे में।

माँ का क्रन्दन अब भी गूंज रहा था –प्रसव-गृह में।

और देखते-देखते ठाकुर सा ने उस बच्ची को अकूड़ी० पर फेंक दिया। वे उसे मार नहीं सके, तलवार से दो टुकड़े नहीं कर सके, गला नहीं घोंट सके, पाँवों से कुचल नहीं सके, शायद माँ की चींखें उनके रोम रोम में अपना असर कर चुकी थी। शायद इस अत्याचार के पुतले शैतान के अन्तर का इन्सान जाग उठा था ।

रात की शून्यता में ठाकुर सा के लौटने की पग ध्वनि स्पष्ट सुनाई पड़ रही थी। कहीं कहीं दूर से गीदड़ चीख उठता था और दो चार भेड़िये इकट्ठे होकर शोर मचा उठते थे, फिर चारों ओर गहरी शून्यता छा जाती थी जिसमें वही ठाकुर सा की पग ध्वनि की हल्की चापें सुनाई पड़ती थीं–सप-सप, सप-सप, सप-सप ।

डेरे में ठकुराइन रोते रोते निढाल हुए जा रही थी। गोलियाँ

०कूड़ा करकट फेंकने का नियत स्थान ।

उसे धैर्य प्रदान करती हुई सान्त्वना दे रही थीं। समझा रही थी –"यह सच्चे राजपूतों की परम्परा है। यह टल नहीं सकती।"

अणचा ने कहा –"यह कोई नई बात नहीं है, सदा होती आई है, इसके लिये सन्ताप करना–क्षत्राणी के लिये अपमान की बात है।"

"नहीं, अणचा नहीं, वह बिल्कुल बच्ची है।.....नहीं. नहीं, मैं इसे नहीं मरने दूंगी।" – ठकुराइन उठी और डेरे के ऊपरी गुम्बज की ओर भागी।

सब गोलियाँ हतप्रभ सी देखती रहीं।

ठकुराइन जोर जोर से चिल्ला रही थी – "ठाकुर सा ! मेरी बच्ची को मत मारिये ठाकुर सा ! मेरी लाड़ली को वापस दे दीजिये वर्ना में कूद मरूँगी। सच कहती हूँ कूद कर अपना सिर फोड़ लूंगी, अपनी हड्डी हड्डी तोड़ लूंगी। ठाकुर सा !.....ठाकुर सा !"

अणचा ने जोर से चीख कर कहा – "नत्थू ! अरे नत्थू ! ठाकुर सा को बुला ला.....।"

"ठाकुर सा !"– जोर की कँपती ठकुराइन की अन्तिम चीख, डेरे की दीवारों से टकराती, टकराकर टूटती हुई धरती माता की गोद में आकर मौन होने लगी।

बचाओ बचाओ की आवाजें शून्याकाश में यूं ही गूंजती रहीं।

और मौन होती होती उस माँ ने जो अपने खानदान की परंपरा पर बलिदान हो गई, एक बार टूटते हुए स्वर में कहा –"मेरी लाडो बेटी।"

बेटी की दीवानी माँ मर गई।

चाँद उस माँ की पागल मौत पर ओसकणों के रूप में आँसुओं का वर्षण कर रहा था।

सप्त ऋषि मण्डल के तारे गगन में अपना अस्तित्व मिटा कर उस मरी हुई माँ के प्रति सहानुभूति प्रदान कर रहे थे।

वातावरण शांत होकर सिसकियाँ ले रहा था।

५

गाँव के तालाब के समीप चार घने स्याह खेजड़ों के पेड़ थे। इन पेड़ों पर खोखे पैदा होते हैं। जबतक खोखे कच्चे होते और सूख नहीं जाते तब तक वे साँगरिया कहलाते हैं। इन साँगरियों की सब्जी अत्यन्त स्वादिष्ट होती है।

गाँव के छोटे छोटे बालक-बालिकायें दोपहर में जब मरुस्थल की उष्ण लू चला करती थी तब इन पेड़ों की छायाओं में एकत्रित होकर विभिन्न ग्रामीण खेल खेला करते थे।

यह रधिया के बचपन की कहानी थी—

उस दिन दोपहर में इन्हीं खेजड़ों की छाया में रधिया और मैंना दोनों गड्डे० खेल रही थीं। ये छः छः साल की बच्चियाँ अपना दोपहर यहीं पर व्यतीत करती थीं –निरर्थक नहीं, सार्थक।

क्योंकि दोपहर की भयानक उष्णता से बचने के लिये गाँव के पशु यहाँ आकर बैठ जाते थे और ये लड़कियाँ गोबर चुगती थीं। गोबर चुगने का तरीका भी विचित्र था कि कोई भी गाय बैठी बैठी जैसे ही उठती थी वैसे ही जो सर्वप्रथम लड़की यह कहती थी–'मैंने देखी' –उस गाय के गोबर पर उसका पूर्ण अधिकार हो जाता था अथवा दो दो या चार चार लड़कियों का परस्पर एक-एक गुट होता था। यह गुट समस्त दोपहर तक गोबर एकत्रित करता था और संध्या के आते आते बराबर हिस्सा करके आपस में बाँट लेता था।

रधिया का ध्यान एकाएक गड्डों के खेल से हटकर सामने बैठी काली

०छोटे छोटे प्राकृतिक पत्थरों के टुकड़े। इन पत्थरों के टुकड़ों को राजस्थान में गड्डे या गुलगुचिये कहते हैं। इनसे हाथों द्वारा विभिन्न खेल खेला जाता हैं।

गाय पर जा टिका। उसे संकेत करती हुई रधिया तनिक रुष्ठ होकर बोली –"यह गाय है या पत्थर की मूरत,० कभी गोबर करती ही नहीं।"

"कैसे करे बेचारी, चौधरी इसे खाने को दे तब तो यह गोबर करे।" –मैंना ने उसकी बात की पुष्टि की।

तभी चौधरी की काली गाय जुगाली करती हुई उठ गई और झट से अंगड़ाई लेकर उसने गोबर कर दिया। रधिया ने हँस कर कहा–"मैंना ! तेरी मेरी बात सुनकर इस गाय को भी गुस्सा आ गया।"

"क्यों नहीं आयेगा ? चौधरी की गाय जो ठहरी।" – दोनों खिलखिला कर हँस पड़ी।

रधिया गोबर उठाकर लाई और दोनों ने मिलकर आपस में बराबर बाँटना प्रारंभ किया। मैंना की नीयत अच्छी नहीं थी सो उसने बाँटने में बदमाशी करनी शुरू की। उसने अपने हिस्से में कुछ अधिक गोबर ले लिया, अतः रधिया ऐसी बदनियत को सह नहीं सकी। फटकारती हुई बोली–"दिन दिन तेरी नीयत खोटी होती जा रही है मैंना !"

"कैसे ?"

"अपनी आँखों से देख।" – उसने गोबर को ओर संकेत किया। –"गोबर बाँटने में भी बेईमानी।"

"तो तू समझती है कि मैने अधिक गोबर ले लिया ?" – मैंना ने गंभीरता से पूछा।

"इसमें क्या फर्क है मेरी घोड़ी।" – रधिया ने उचक कर उसकी गुदड़ी (अलक) को पकड़ लिया और फिर लगाम की भाँति खींचने लगी।

गुदड़ी के खींचने पर मैंना को कष्ट हुआ ! वह अकड़ कर बोली –"क्या मूर्खता कर रही है ! छोड़ न रधिया, मेरे बाल उखड़ जायेंगे।"

"तू इसी भाग्य की है।" – और उसने और जोर से उसकी गुदड़ी खींचनी प्रारम्भ की।

---

० मूर्ति।

"छोड़ न ?"

"थोड़ा चल न घोड़ी।" – रधिया के अधरों पर उपहास भरी स्मित थी।

"छोड़ेगी या नहीं ?" – क्रोध आ गया मैना को।

"नहीं छोड़ूंगी।" – रधिया ने अकड़ कर कहा।

"क्यों नहीं छोड़ेगी, तेरी माँ की गुदड़ी है ?"

"हाँ !"

"क्या हाँ-हाँ करती है ?" – बस मैना एकदम बिगड़ गई –"एक झापड़ मार दिया तो चारो खाने चित्त हो जायेगी।"

"चित्त मैं नहीं, तेरी माँ हो जायेगी।" – रधिया ने एक थप्पड़ मार दिया मैना के सिर पर और मैना ने रधिया के हाथ को पकड़ कर दाँतों से काट लिया।

फिर क्या था ?

दोनों का द्वन्द्व प्रारंभ हो गया। गुत्थमगुत्थी हो गई। एक दूसरे से खूब उलझ गई। कुश्ती सी हो गई। फलस्वरूप दोनों के वस्त्र धल धूसरित हो गये।

मैना का जाँघिया० एक जगह से फट गया तो रधिया का चोला भी नहीं बच सका।

दोनों एक दूसरे से विलग होकर दस फीट की दूरी पर बैठ गई।

पारा अभी तक दोनों का चढ़ा हुआ था।

जैसे ही दोनों की चार नजरें होती वैसे ही दोनों एक दूसरे के समक्ष मुंह बिगाड़ कर, जीभ निकाल कर चिढ़ाने का प्रयास करती थीं।

मैना के माथे में जूएँ थीं अतः अभी इतने जोर की खाज चल रही थी कि उसके प्राण से निकल रहे थे। धर्म संकट की स्थिति थी बेचारी मैना

०हाफ पैंट।

की । यदि वह जूएँ निकालती है तो रधिया यह कहे बिना न रह सकती कि तू जूंओं की जूत्थली० है और यदि न निक-लती है तो बस खुजली के मारे उसके प्राण ही निकलने को थे ।

विवश हो उसने माथा खुजलाया । रधिया तो मौका ताकती ही थी । तपाक से बोली – "जूंओं की जुत्थली, जा अपने घास को साफ करके आ, नहीं तो तू सब जगह जूंओं को फैला देगी ।"

"जूंओं की जुत्थली होगी तेरी मॉ ।" – मैना उठ खड़ी हुई ।

"कहने वालों की होगी सात पीढ़ी ।" – रधिया भी तन कर खड़ी हो गई ।

दो सावधान सैनिक रौद्र रूप धारण किये खड़े थे–एक दूसरे के सामने ।

दोनों एक दूसरे को घूरती रही, मुक्का दिखाती रही, मुंह की विभिन्न आकृ तयाँ बना कर चिढ़ाती रही ।

फिर दोनों आगे बढ़ीं । रधिया और मैना के बीच का फासला एक कदम रह गया था । दोनों इस बात की प्रतीक्षा में थीं कि पहले जो हाथ लगायेगी, वह मुंह की खायेगी ।

अन्त में रधिया ने मैना को स्पर्श किया ।

मैना भड़क पड़ी –"क्यों हाथ लगाती है मेरे नाई की जाई ।" – मैना यह वाक्य प्रहार करके अहम् से रधिया को देखने लगी । रधिया अल्पकाल तक खो सी गई । तुरन्त उसने बोलने के लिये मुंह खोलना चाहा कि मैना दामिनी सी कड़क उठी – "मेरे सामने मुंह खोलती है नाई की जाई होकर, तेरा बाप तो मेरे घर के बर्तन माँजता है ।"

दूसरी चोट से रधिया तिलमिला उठी ।

अपने दायें पाँव को धरती पर जोर से पटकती हुई बोली –"तो तू भी कान खोल कर सुन ले, आज से मेरा बाप तेरे घर पर बर्तन मलने नहीं

०घर ।

आयेगा, और नहीं आयेगा तेरे बाप की हजामत करने, फिर अकड़ना मुझसे ! जानती हो, यदि मेरा बाप तेरे बाप की दाढ़ी नहीं बनाये तो थोड़े ही दिनों में तेरा बाप लंगूर नजर आयेगा।" – कह कर रधिया ने मैंना को अंगूठा दिखा दिया। उसका उत्तर मैंना ने भी जीभ को बाहर निकाल कर दिया। तब दोनों अपनी अपनी गोबर की कढ़ाइयाँ माथे पर रख कर, अपने अपने घर की ओर चल पड़ी।

दोनों का रास्ता एक था। गन्तव्य स्थान भी आमने-सामने था पर आज दोनों एक दूसरे से पचास पचास कदम दूर चल रही थीं। हाँ, कभी कभी परस्पर एक दूसरे की दृष्टि बचाकर कनखियों से देख लेती थीं। दैवयोग से परस्पर यदि नजरें टकरा जातीं तो दोनों ही झेंप कर अकड़ जाती थीं। तब चलने की दूरी दो कदम और बढ़ जाती थी।

रधिया का बाबा रेवतदान हाथ धोकर चूल्हा जलाने के लिये लकड़ियां और थेपड़ियाँ एकत्रित कर रहा था। अभी तो उसकी विचारधारा रधिया के गत जीवन पर केन्द्रीभूत थी। वह सोच रहा था–'दो साल की आयु में उसे अपनी माँ छोड़कर चली गई। इन छः सालों में उसने उसे धरोहर की भांति संभाल कर रखा है। अपने हृदय की ममता, पितृत्व, अपनत्व, और सर्वस्व रधिया पर न्यौछावर कर दिया है। यजमानी के सब कामों की जिम्मेदारियाँ संभालता हुआ रेवतदान गृह कार्य को भी सफलता से पूरा करता आया है। रधिया के जागने से लेकर सोने तक के जो भी हठ हैं, उन्हें रेवतदान हँसते हँसते पूरा करता है। यही कारण था कि रधिया माँ को भूल सी गई है।' – सपना भं हुआ।

चूल्हे में आग जलाकर रेवतदान ने सब्जी पकाने के लिए ज्योंही हँडिया में तेल डाला त्योंही रधिया ने बाड़ में प्रवेश किया। गोबर की कढ़ाई को आज उसने आहिस्ते से न रखकर जोर से खड़े खड़े ही पटकी। कढाई के गिरने की आवाज सुनकर रेवतदान चौंका। उसने भीतर से ही पुकारा – "कौन है ?"

"....." – रधिया ने कोई उत्तर नहीं दिया। पाँवों से धम धम की आवाज करती हुई रसोई घर में आ गई।

रेवतदान ने विस्मय से नयन मटका करके रधिया के फूले हुए मुंह की ओर देखा। तत्पश्चात पूछ बैठा –"क्या बात है बेटा ?"

"....." – रधिया यह सुनकर और उदास हो गई। उसके चेहरे पर दुख की गुरु-गंभीर रेखायें दौड़ गईं।

"भाग्यवान बोलती क्यों नहीं, क्या किसी से झगड़ा हो गया है ?" – बाबा का यह पूछना था कि रधिया रो पड़ी। ऐसे फूट पड़ी कि बाबा की शंका भी सत्य में बदलने लगी। उसे पुचकारता हुआ बाबा बोला –"बताओ तो सही किसने पीटा ? मैं उस हरामजादे के हाथ-पाँव तोड़ कर रख दूंगा।.....बता मेरी लाडो, अरी बता न ?" – बाबा का स्वर कोमल था। उसने उसे उठा कर अपनी गोद में बिठा लिया। पर रधिया रोये ही जा रही थी। नयनों से अविरल अश्रु आबद्ध गति से कपोलों पर प्रवाहित होने के चिन्ह छोड़ करके बहे ही जा रहे थे। सिसकियों पर सिसकियाँ आ रही थीं। बाबा उसे भाँति भाँति का प्रलोभन दे कर रोने का कारण पूछ रहा था। रधिया बताना भी चाहती थी पर हृदयोद्रेक के कारण बता नहीं पा रही थी। तब बाबा की सहानुभति क्रोध में बदल गई। वह झल्ला पड़ा –"कर्म फूटी ! रोती ही रहेगी या कुछ कहेगी भी।"

बाबा की ताड़ना सुनकर रधिया रुआँसी के साथ हकलाती हुई बोली–"मुझे.....मु...झे.....मैना ने गालियाँ दी.....।"

"गालियाँ दी ?.....क्यों गालियाँ दी ?"

"गोबर के कारण ?"

"बालन जोगी+ ने देखी नहीं है, मेरी रीस० को।.....कैसी गालियाँ दी ?"

+जलाने के लायक, ०रोष।

"उसने कहा तेरा बाप तो मेरा चाकर है, हमारे बर्तन माँजता है।"

"अरे पगली ! क्या यही कोई गाली है ? यह तो हमारा भगवान का दिया हुआ धंधा है। भगवान ने हमें जिस जाति में पैदा किया है, उसके धर्म कातो हमें पालन करना ही चाहिये।"

"नहीं, अब तू उसके घर मत जाना, नहीं तो मैंना मुझे चिढ़ायेगी।"

"अच्छा,बाबा अच्छा,कल से नहीं जाऊँगा, कान पकड़ता हूँ !"– बाबा ने अपने कान पकड़े। रधिया ने उसको देखा ! बाबा ने अपना मुंह फुला लिया है। रधिया जोर से हँसकर लिपट गई। बाबा ने उसे छाती से चिपका लिया। दोनों के हृदय गद्‌गद् हो गये। बाबा की आँखें तरल हो गई जैसे पितृत्व अपने उचित पात्र का स्पर्श प्राप्त कर कृत्य कृत्य हो गया हो।

यह क्रम बहुत देर तक चलता रहा।

तब रधिया ने अत्यन्त भोलेपन से बाबा को देखा। देखकर अपने मुलायम हाथों से उसके दोनों गालों को पकड़ कर अपने सामने किया। अब दोनों के मुख एक दूसरे के मुख के नितान्त सन्निकट थे। बाबा की आँखों में आँसू उमड़े हुए थे। इन आँसुओं को संकेत करती हुई रधिया बोल पड़ी –"बाबा ! तू इतना बड़ा होकर रोता है ?.....छि ! छि !!..... पर तू क्यों रोता है ? तुम्हें भी किसी ने गालियाँ दी है ?"

"नहीं बेटा ! मुझे आज तेरी माँ की ओलू (याद) आ गई।"

"मेरी माँ ?.....बाबा, मैंना कहती थी तेरी माँ मर गई है, अब वह लौट कर कभी भी नहीं आयेगी। मैंने डाँट कर कहा–थूक अपनी जबान से, मेरी माँ तो जरूर वापस आयेगी।"

"जा, मैं कहती हूँ कि वह नहीं आयेगी।"

"मैं कहती हूँ आयेगी।"

"कैसे आयेगी, वह तो आभै० में चली गई है। वहाँ जाने वाला

०आकाश।

कभी वापस नहीं आता।" – रधिया बाबा की आँखों में अपनी आँखें डालकर बोली –"बाबा ! मेरी माँ वहाँ क्यों चली गई ?"

"भगवान ने उसे बुला लिया था।"– और तुरन्त बात के विषय को बदलता हुआ रेवतदान बोला –"अच्छा तू बाहर जाकर दो चार सूखी थेपड़ियाँ उठा ला, दौड़ कर लाना, आग जल्दी से तेज करनी है, नहीं तो रोटियाँ पकाते पकाते संझा पड़ जायेगी।"

रधिया गत घटना को नितांत विस्मृत कर के कूदती-फाँदती बाहर चली गई।

रवतदान किसी विचार में खोया हुआ आग में फूंक मारने लगा। फूक के कारण आग भभक उठी। रेवतदान ने उसमें साँगरिया छोड़ी। तभी रधिया दोनों हाथों में दो दो थेपड़ियाँ लिए आ पहुँची। चूल्हे के समीप सारी थेपड़ियाँ रख, आँखें फाड़कर कहने लगी –"बाबा ! यह मगन काका है न, बड़ा दुष्ट है, देखो, बेचारी काकी को पीट रहा है।"

"हाँ बेटा पीटता होगा, दूसरा व्याह बुढ़ापे में जो किया है ?"

"व्याह तो ठाकुर सा ने भी किया है। वे तो नई ठकुराइन सा को नही पीटते। बहुत प्यार करते हैं।"

"वे बड़े आदमी है न, उन्हें क्या ?" – बाबा इतना कहकर पुनः फूक मारने लगा। आग तेज होकर चूल्हे के बाहर निकल आई।

"बाबा ! तू कहे तो मैं गुड़ियाँ बनाऊँ ?"

"जाओ बिटिया, अपनी गुड़िया बनाओ पर आज जरा बहुत ही चोखी गुड़िया बनाना।"

"ठीक है, वैसी ही बनाऊँगी।"

और रधिया एक कोने में बैठकर वस्त्र के टुकड़ों की गुड़ियाँ बनाने लगी।

६

रात का गहरा सन्नाटा गाँव पर छा गया था ।

बैठकखाने के आगे की चौपाल में रखी खाट पर पाँव पसारे ठाकुर सा हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे ।

नई शादी में आया गोला मेघला उनके पाँव दबा रहा था । और ठाकुर सा की प्रत्येक हाँ में अपनी हाँ मिला रहा था ।

ठाकुर सा अपनी मूंछों पर ताव देते हुए विश्वास भरे स्वर में बोले –"मेघला जब तक हम ठाकुर केसरी सिंह से अपने अपमान का बदला न ले लेंगे तब तक हम अपने इस जीवन को व्यर्थ ही समझेंगे, अपनी रज-पूताई को बारबार धिक्कारेंगे ।"

"अन्नदाता ! मुझे पूरा विश्वास है कि आप जिस रोज उनके गाँव पर हमला कर देंगे, उनकी धज्जियाँ उड़ जायेगी । ऐसा माई का लाल कौन है जो आपकी तलवार के सामने ठहरे !" – चापलूसी के स्वर में कहा मेघला ने ।

ठाकुर सा की आँखों में पानी भर आया । पश्चाताप से बोले– "जब हम दो सौ गाँव के स्वामी थे, जब हमारे पास सैकड़ों रंगरूट थे,उस समय कोई गर्दन उठाने वाला भी नहीं था और आज वह गोले का वंशज गर्दन तानकर कहता है –"जसवन्त सिंह एक गाँव का पहरेदार है, हम और पहरेदार ?"

"कौन कह सकता है माई-बाप ? मुझे भरोसा है जब हम उसको चुनौती देंगे तो जीत हमारी ही होगी ।"– मेघला अपने स्वामी को एकटक देखने लगा ।

बात यह थी कि ठाकुर जसवन्त सिंह जी और ठाकुर केसरी सिंह जी की आपस में खानदानी शत्रुता थी । दोनों के पास अपने अपने दो सौ गाँव थे । लेकिन इधर गाँवों के नरेश ने जसवन्त सिंह जी के

अग्रज से तनातनी होने के कारण उन गाँवों का अधिकार पुनः अपने हस्तगत कर लिया था। उनके सारे रंगरूटों को अपने अधीन कर लिया था।

इन नरेशों का अस्तित्व बहुत मजबूत था। इनके ही संकेतों पर इन जमींदार राजपूतों के भाग्य बनते और बिगड़ते थे।

बात २० साल पहले की थी–

जसवन्त सिंह जी के पिता ठाकुर प्रताप सिंह जी जीवित थे।

कुँवर जसवन्त सिंह और नारायण सिंह, दोनों का विवाह हो चुका था। बड़े थे नारायण सिंह और छोटे थे जसवन्त सिंह। दोनों के विवाह में सात-सात गोलियाँ दहेज में आईं। इनमें एक थी चंदा।

चंदा नारायण सिंह की अपनी विशेष गोली थी। उसका विवाह भी मूलिये नामक गोले से कर दिया गया था।

नारायण सिंह उसे अपने अन्तःपुर से बाहर भी नहीं निकलने देते थे। उसके सौंदर्य की अजस्त्र धारा में वे फूल से बहे ही जा रहे थे और चंदा भी मग्न थी। अपने स्वामी का हार्दिक प्रेम पाकर वह तो निहाल हो गई थी। दिन भर वह नारायण सिंह की आमोद की वस्तु बनी रहती थी।

इधर नारायण सिंह की बहू सहोदरा अपने मुश्की रंग के कारण उपेक्षिता का जीवन व्यतीत कर रही थी। अपनी ही आँखों के सामने अपने पति को गोली के चरणों में लोटते देखकर उसका कलेजा फटने लगता था। उसने कई बार प्रताप सिंह जी से शिकायत की तो उसे उल्टा ही उत्तर मिला – "हम इसी प्रकार करते आये हैं, यह तो हमारी आन है। ये गोलियाँ फिर होती ही किस वास्ते हैं ?"

सहोदरा यह उत्तर सुनकर तड़प उठी। अरमान भीतर ही भीतर मन मसोस करके घुटते रहे और घुटते घुटते एक दिन राज्यक्ष्मा के किटाणु बन गये।

अब तो परिणीता परित्यक्ता भी बन गई।

नारायण सिंह कभी कभी आकर उसके सेहत के बारे में पूछ जाते थे ।

समय बीतता गया ।

एक दिन प्रताप सिंह जी मर गये ।

सहोदरा कुंवर नारायण सिंह का पिंड छोड़कर चली गई ।

कुंवर नारायण सिंह ठाकुर बन गये और चंदा सर्वेसर्वा ।

और बेचारा चंदा का पति मूलिया ? उसकी अत्यन्त दयनीय दशा थी । वह अपनी पत्नी के सलोने चेहरे के लिये तरसता रहता था । सबको कहता रहता था कि एक बार चंदा से कोई मिला दे, सिर्फ एक बार !

एक दिन उसने रोते रोते पोतकी से कहा –"पोतकी ! सिर्फ एक रात के लिये चंदा को मेरे पास भिजवा दे न, फिर मैं कभी भी नहीं कहूँगा, सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि मैं कभी भी नहीं कहूँगा ।"

लेकिन कौन बैठा था वहाँ जो उस गुलाम की प्रार्थना को सुनता ? उसकी बीवी और उसे ही सिर्फ एक रात के लिये नसीब न हो, जीवन की यह कैसी विडम्बना थी, कितना भयानक अभिशाप था ?

आज मूलिये ने यह निश्चय कर लिया था कि वह अन्नदाता के पाँव पकड़कर गिड़गिड़ायेगा । कहेगा –"माई-बाप मैं भी आदमी हूँ । मुझे भी औरत चाहिये ।" – पर जैसे ही उसने नारायण सिंहजी को देखा वैसे ही वह अपना निर्णय विस्मृत करके कह उठा – "घणी घणी खम्मा अन्नदाता ने !"

"देख मूलिया, ऊपर वाली मैड़ी० में चंदा का घाघरा पड़ा है, लाकर उसे दे दे ।"– ठाकुर सा बोले ।

"हुक्म अन्नदाता !"

मूलिया भागता भागता ऊपर गया । उसे आज इतनी प्रसन्नता

---

० छत्त पर बना छोटा कमरा ।

थी कि वह बस झूम-सा रहा था। आज वह चंदा को एकान्त में पाकर अवश्य ही प्यार की बातें करेगा –"मैं उसे कहूँगा कि तू कितनी निर्मोहिनी है, कभी मुझसे लुक छिप कर दो बातें भी करने नहीं आती। और जब वह कहेगी, मैं क्या करूँ ठाकुर सा आने ही नहीं देते। तो मैं कहूँगा, रहने दे ये सब बहानें, मिलने आना चाहती तो लाख रास्ते थे। तब चंदा हाथ जोड़कर अवश्य कहेगी कि मेरे अच्छे मूलू तू कितना अच्छा है? अच्छा, अब मैं हर रोज तेरे से मिलने आऊंगी। चिंता न कर, अब तो है न राजी,.....हँस,.....हँस न! उसके इतने हठ पर मैं भला कैसे अपनी हँसी को रोक सकूगा? वह मेरे होठों पर हँसी को देखकर निहाल हो जायेगी। मेरी ओर बढ़ेगी। मैं अपनी बाहें फैला दूगा, वह मेरी बाहों में आ जायेगी। मैं, मैं उसके गाल का एक चुम्बन लूगा। तब वह कितनी खुश होगी?...क्यों न हो? अपने घरवाले मूलू का तो वह पहला चुम्बन ही होगा।"– गर्व से उसकी आँखें चमक उठी। वह घाघरा लेकर पुनः नीचे उतरने लगा। उतरने की गति उसकी तत्काल उस वृद्ध की सी थी जो चलने में असमर्थ होने के कारण निचली सीढ़ी पर पहले दायाँ पाँव रखता है फिर अपना बायाँ पाँव। –"यदि वह ना-ना करने लगे तो? जरूरी करेगी। मुझ से तो बेचारी शर्म करती ही होगी? ठाकुर सा ने व्याह के बाद हम दोनों को मिलने ही कब दिया था? लेकिन आज उससे अवश्य मिलूंगा। अपनी घरवाली चंदा से दो बातें करूँगा। चंदा.....।" –सीढ़ी से पाँव उचकने कारण उसकी विचारधारा बन्द हो गई।

सामने ठाकुर सा का शयनागार था। इस शयनागार में चंदा थी।

मूलिये ने निर्भय होकर शयनागार में प्रवेश किया। चंदा खाट पर अर्द्धशायित थी। मूलिये को देखकर उसने तुरन्त अपनी वक्ष को ढक लिया।

मूलिया उसे एकटक निगाहों से देखता रहा। सोचता रहा –"ओह

कितनी फूटरीफरी० इन्द्र की परी है मेरी बहू ! हे भगवान ! मूलिया आगे बढ़ा ।

चंदा बैठ गई ।

मूलिये ने सोचा था –"चंदा उसे देखकर अवश्य खुश होगी पर जब उसने देखा कि उसके चेहरे पर उसके आगमन पर किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं आया है तो उसके हृदय पर एक आघात-सा लगा । भयभीत सा बोला –"चंदा !"

"घाघरा लाया है ?" – बैठे बैठे ही पूछा चन्दा ने । उसकी भौंहें वक्र थी । मिजाज कुछ बिगड़ा-बिगड़ा जान पड़ा ।

"हाँ !"

"रख दे ।"

"पर....।"

"हाँ-हाँ बोल, डरता क्यों है ?"

"चंदा ! ठाकुर सा तुम्हें कष्ट तो नहीं देते ?"

"नहीं, अपनी ठकुराइन से भी अधिक सुख देते हैं मुझे ।"

"तेरी कोई मनसा (इच्छा) है ?"– मूलिये का संकेत अपनी ओर था।

"नहीं, मेरी सब मनसायें पूरी हो जाती हैं । मैं जो ठाकुर सा को कहती हूँ, वह तुरन्त पूरा कर दिया जाता है ।"

"और भी कोई इच्छा ?"– मूलिये ने दुबारा धृष्ठता की कि इस बार भी चंदा यह कह दे कि एक मनसा है, और वह है तेरे से मिलने की पर इस बार उसने तनिक रूठ कर, नयन तरेर कर पूछा – "तू आखिर कहना क्या चाहता है ?"

"मैं ?"

"हाँ तू !"

---

० बहुत सुन्दर ।

"चंदा ! तू एक बार ठाकुर सा से कहकर मेरे पास आ जा न, मैं तेरे-से बहुत सी बातें करना चाहता हूँ ।"

"मुझसे ?"

"हाँ चंदा, मेरी बहू तो तू ही है । अपने दुख-सुख की बातें तेरे सिवाय मैं किससे कहूँ ?" – मूलिये की आँखें तरल हो गईं ।

"लेकिन मूलिया ठाकुर सा नाराज हो गये तो तेरी बोटी बोटी कटवा देंगे । चला जा, यदि ठाकुर सा ने सुन लिया तो देखते हो तलवार ।" – चंदा ने दीवार पर लगी तलवार की ओर संकेत किया ।

मूलिया काँप उठा ।

अपनी बगलबन्दी की बाँह से आंसुओं को पोछता हुआ बाहर निकल आया ।

बाहर उसे पोतकी मिल गई ।

उसके पाँव पकड़कर मूलिया चीख उठा – "पोतकी ! तू कह दे न एक बार ठाकुर सा को ।"

उसके अश्रु प्लावित चेहरे को देखकर पोतकी का हृदय आर्द हो उठा । उसने उसे आश्वासन दिया – "आज मैं नारायण सिंहजी को कहूँगी, तू चिंता न कर ।"

पोतकी सीधी नारायण सिंहजी के पास गई । उसे फटकारती हुई बोली –"कुंवर सा! आप आदमी हैं या राक्षस ! आपको जरा सी भी दया नहीं आती इस गरीब मूलिये पर । देखिये ! अपनी घरवाली के लिये कितना छटपटा रहा है ?"

"आप भी किन गोलों की बातें करने लगी हैं । ये लोग ऐसे ही रोते पीटते रहते हैं ।" – उपेक्षा से बोले नारायण सिंह जी ।

"नहीं कुंवर सा ! मेरे कहने पर एक रात के लिये चंदा को उसके पास भेज दीजिये । अपने मन की मनसा पूरी कर लेगा बेचारा !"

"जैसी आपकी आज्ञा।" – नारायण सिंह जी ने पोतकी को उत्तर दिया।

तब नारायण सिंह जी को एक मजाक सुझाई दिया।

उन्होंने अपने तमाम चाकरों को बुलाकर इस बात की सख्त आदेश दिया कि हम जो तमाशा करने जा रहे हैं, उसका भेद कदापि नहीं खुलना चाहिये।

इसके पश्चात उन्होंने एक चौदह वर्षीय गोले को कहा कि तू जनाना कपड़े पहन कर तैयार हो जा। और वह लड़का तैयार होने के लिये चला गया।

एक गोला भागकर मूलिये को बुलाकर लाया। मूलिये ने आते ही सर्वप्रथम अन्नदाता को सिर झुका कर प्रणाम किया। नारायण सिंह जी ने तुरन्त उसकी पीठ थपथपाकर कहा–"जा आज हमने तेरी प्रार्थना सुन ली। आज चंदा तेरे साथ रहेगी। जा, पहले खेत से बलदेव को बुला ला।"

सम्राट को खोया हुआ साम्राज्य मिल जाने पर जितनी प्रसन्नता होती है, उतनी ही प्रसन्नता हुई मूलिये को अपने स्वामी के इन शब्दों को सुन कर। वह शीघ्रता से डग उठाता खेत की ओर रवाने हुआ।

उसके जाते ही नारायण सिंह जी जोर का अट्टहास कर उठे।

लापरवाही से बोले–"जाकर बद्री से कह दो कि तू जनाना कपड़े पहन कर मूलिये की कोठरी में बैठ जा। आज खूब मजा रहेगा।"

"हाँ ठाकुर सा मजा आ जायेगा।" – सब गोलों ने स्वीकृति दी।

लगभग एक घंटे के बाद मूलिया पुनः लौटा। उसके रूखे-सूखे बालों में तेल पड़ा देखकर ठाकुर सा ने चुटकी ली –"अरे, यह तेल कहाँ से लगा लाया रे ?"

"बलदेव के यहाँ से !" – संकोच से कहा मूलिये ने।

"क्या ठाट हैं तेरे आज ?"

"अन्नदाता की दया है।" – सिर झका कर प्रणाम किया मूलिये ने।

"जाकर अपनी जोरू को संभाल, बड़ी देरी से तेरी प्रतीक्षा कर रही है।"

मूलिया अपनी कोठरी की ओर चला। अन्य व्यक्ति कार्य करने का मिथ्या उपक्रम करने लगे। सबकी दृष्टि मूलिये की कोठरी पर जमी हुई थी।

मूलिये ने कोठरी में प्रवेश किया।

एक कोने में बद्री घूंघट निकाल कर बैठा हुआ था। मूलिये को प्रवेश होते देख कर वह और सिकुड़-सिमट कर बैठ गया। मूलिये की प्रसन्नता के मारे बाछें खिल गई थी। उसके चेहरे के भावों से ज्ञात हो रहा था कि उसको आज अनायास ही अप्राप्य वस्तु छप्पर फाड़ कर मिल गई है, तभी तो उसकी खुशी का पारावार नहीं है।

वह आगे बढ़ा। धीरे से पुकारा –"चंदा !"

".....।" – उत्तर में मौनता मिली।

"ए....ए चंदा।"– उसने अपने दोनों हाथों से चन्दा के कन्धों को पकड़ लिया। इस बार बद्री ने नखरे से कहा –"ऊँ हूँ !"

"अरी तू तो बड़ी शर्मीली है। घूम न मेरी ओर, मुझसे लाज-शर्म कैसी ?"

".....।" – बद्री जैसा का तैसा ही बैठा रहा।

"घूम न।"– और मूलिये ने जोर से उसे अपनी ओर घुमाया। बद्री घूंघट की ओट में ऊँ ऊँ करता रहा। वर्षों से छिपी वासना की उत्तेजना ने मूलिये को बावला सा बना दिया था। उसने तुरन्त झटके के साथ घूंघट हटा दिया। देखा–तो जैसे कलेजा पर तीर सा लग गया है। कोठरी के द्वार पर हँसी गूंज उठी। मूलिया पागल सा बाहर आया। चीख उठा –"यह क्या है मजाक, लाज नहीं आती तुम लोगों को ?"

"हम क्या करें ?....ठाकुर सा ने करने को कहा था।"

"ठाकुर सा की ऐसी की तैसी,..... नहीं, नहीं, तुम लोग ठाकुर सा को मत कहना , मैं हाथ जोड़ता हूँ, तुम लोगों के पाँव पड़ता हूँ, ठाकुर सा को मत कहना कि मैंने उनको ओछे० शब्द कहे।" – उसके बाद वह अपने आँसुओं को पोंछने लगा। दुख से द्रवित आँखों में भाव बोल रहे थे –'ये गोले गोले नहीं, पूरे दुष्ट हैं, साँपनाथ के भाई नागनाथ हैं।'

दूसरे दिन से मूलिया चाह भरी दृष्टि से अपनी पत्नी को निहारा करता था।

चातक स्वाति बूंद के लिये जिस तरह प्यासी अंखियों से देखता रहता है उसी प्रकार मूलिया ठाकुर सा की कृपा के लिये विनय भरी दृष्टि से निहारा करता था। उसके कथन में गत्यावरोध की क्षीण रेखा भी नहीं थी, एक कसक अवश्य थी। वह कसक काँटे सी चूभती जा रही थी कि वह इतना हतभागा है कि वह अपनी बहू से दो घड़ी बात भी नहीं कर सकता।

समय की गति चिरन्तन है।

गाँवों के अधीश्वर नरेश पद्मसिंह जी अपने सामान्तों, अपने खैर-ख्वाहों की देख भाल करते करते नारायण सिंहजी के ग्राम में पधारे।

उनके आगमन की सूचना पाते ही सारे ग्रामों की सफाई कराई गई। प्रत्येक ग्रामवासी को आज्ञा दी गई कि महाराज का रास्ते में खड़े होकर स्वागत करें तथा उनकी जयजयकार करें। सैनिकों को सलामी के लिये तैयार किया गया। कसूम्बे और ढोलनियों का भी प्रबन्ध किया गया।

नरेश पद्मसिंह जी ने नारायण सिंह जी के अपने विशेष कमरे में अपना डेरा जमाया। सारे गाँवों के प्रबन्धक जसवन्त सिंह जी ने नरेश की जी हुजूरी करने में कोई भी कोर कसर नहीं रखी।

---

० साधारण।

भोजनोपरान्त कसूम्बे के भरपूर जाम के साथ ढोलनियों के नृत्य व गीत हुए। गीत के पश्चात पद्मसिंह जी ने नारायण सिंह जी को फरमाया –"तो ठाकुर सा, आज रात हम अकेले ही बीतायेंगे ?'

"नहीं...नहीं अन्नदाता ! मैं आपकी सेवा में अभी माल हाजिर करता हूँ।" – नारायण सिंह जी कमरे के बाहर चले गये।

जसवन्त सिंह जी ने अवसर पाकर नरेश के कानों को भरना आरंभ किया –"अन्नदाता ! नारायण सिंह जी के पास चंदा नामकी अत्यन्त फूटरीफरी गोली है, क्या जोबन है माई-बाप, बस..!" – यह है, वह है, बहुत सा बक दिया जसवन्त सिंह जी ने।

"अच्छा !" – नरेश के नयनों में वासना भमक उठी – "उसे ही बुलाओ, हम उसी के साथ रहेंगे।"

"किसके साथ महाराज ?" – नारायण सिंह जी ने प्रवेश करते हुए पूछा।

"चंदा के साथ !"

"खम्मा अन्नदाता ! चंदा केवल नारायण सिंह जी की गोली ही नहीं, रखेल भी है।"

"क्या कहते हैं ? महाराज की इच्छा से कोई अधिक है ?"– जसवन्त सिंह जी ने नारायण सिंह जी को टोका।

"कुछ भी हो, पर चंदा किस के साथ भी नहीं रह सकती ?" – नारायण सिंह जी ने दृढ़ होकर कहा।

"हमारे साथ रहेगी !" – महाराज गर्जे।

"अवश्य रहेगी अन्नदाता !" – जसवन्त सिंह जी ने हाथ जोड़ दिया।

"ये हमारे सामने जवान चलाते हैं। हम आपकी जबान काट लेंगे।"

"जबान काटने वाले इस पथ्वी पर ही नहीं रहे।"– नारायण सिंह जी ने महाराज को एक भयंकर चुनौती दी। जसवन्त सिंह जी ने उसे

रोका –"क्या बकते हैं भाई सा, आपके सामने अपने महाराज हैं ? चंदा को दे दीजिये न ?"

"चंदा तो मेरी मौत के बाद ही मिलेगी। जानते नहीं मैं राजपत हूँ।"

"गिरफ्तार कर लो !...जसवन्त सिंह जी ! हम आपको आज्ञा देते ह।" – नरेश शेर की भाँति दहाड़े।

जसवन्त सिंह जी ने नारायण सिंह जी को एक बार और समझाया –"आप मान जाइये, चंदा को दे दीजिये।"

"मैं नहीं दूंगा। अपनी बात से टलने वाला गोला होता है।"

"गिरफ्तार कर लो !"....जसवन्त सिंह आगे बढ़े। नारायण सिंह जी तलवार संभालने को उद्यत हुए थे ही कि जसवन्त सिंह जी ने तुरन्त दो सिपाहियों को बुलाकर नारायण सिंह जी को पकड़ा दिया।

नारायण सिंह जी ने भूखे सिंह की भाँति गर्ज कर कहा –"जसवन्त सिंह ! तू राजपूत नहीं, गोला है। आज तू ने भाई का साथ नहीं दिया। लेकिन मुझे छूटने दे, छूटने के साथ ही तेरे टुकड़े टुकड़े करके रख दूंगा।" –सिपाही नारायण सिंह जी को पकड़ कर ले गये।

जसवन्त सिंह जी ने तुरन्त चंदा को नरेश के सम्मुख उपस्थित किया। नरेश उसके अनुपम यौवन पर मुग्ध हो गये। कहने लगे–"जसवन्त सिंह जी ! वास्तव में इसका रूप अप्सरा का है।"

"पर महाराज नारायण सिंह जी मुझे छूटते ही .....।"

"चिंता न कीजिये, आज से आपको हम गाँवों का पट्टेदार बनाते हैं। नारायण सिंह जी का मामला आप अपने हाथ में रखिये।"

"जो आज्ञा !"– कहकर जसवन्त सिंह जी ने महाराज के हाथों में कसूम्बे का प्याला पकड़ा दिया। चंदा पर इस परिवर्तन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। स्वामी की आज्ञा पर वह नरेश के साथ रात भर रहने को राजी हो गई। महाराज ने पूछा भी था कि तुम्हें नारायण सिंह जी के

पकड़ जाने का दुख नहीं तो है ? चंदा बोली थी कि नहीं, वह तो गोली है, गोली, उसका धर्म केवल आज्ञा मानना है अपने अन्नदाता की ।

जसवन्त सिंह जी तुरन्त नारायण सिंह जी के विरुद्ध और उनके द्वारा महराज के अपमान की बातें गाँवों में फैला दी । यह समाचार सुनते ही ग्रामवासी नारायण सिंह जी को भला बुरा कहने लगे । उनकी कटुआलोचना प्रत्यालोचना करने लगे । क्योंकि राजा तो ईश्वर के बराबर माना जाता था । वह कभी गलत काम व बुराई कर ही नहीं सकता । जनता का ऐसा विश्वास था ।

फल यह हुआ कि प्रभात होते ही ग्रामीणों का हृदय नारायण सिंह जी के प्रति घृणा से भर गया और जसवन्त सिंह जी के प्रति सबका आदर उत्पन्न हो गया । नरेश के साथ उनकी सवारी साथ साथ सज्जित रथ पर निकली अतः ग्रामीणों ने निर्विरोध यह स्वीकार कर लिया कि नारायणसिंह जी जैसा जसवन्त सिंह जी कहते हैं, पागल हो गये हैं, यदि उनका चित्त ठिकाने पर होता तो भला वे इस प्रकार का अनर्गल अलाप करते !

और बेचारी चंदा !

उस रात के बाद उसकी सेहत इतनी गिरने लगी कि उससे उठा नहीं गया । अब मूलिया उससे बातें कर सकता था, प्यार से बोल सकता था लेकिन अब चंदा के चेहरे पर सौंदर्य की दीप्ति नहीं थी । अब उसके तन में वह माँसलता नहीं थी । अब तो उसके गुप्ताँग से इतना रक्तस्त्राव होता था कि उसका गुलाब सा चेहरा पीला पड़ गया था ।

ठीक पन्द्रहवें दिन गाँव के बीचो बीच एक पिंजरा बना ।

लोगों ने समझा—शायद नये ठाकुर साहब रैयत के मनोरंजन के लिये शेर पकड़कर उसमें डालेंगे—लेकिन एक दिन उसमें प्रचारित पागल नारायण सिंह लाकर बन्द कर दिया गया ।

बन्द करने के बाद वह कितना दहाड़ा था —"तू भाई नहीं कसाई

है, कभी इस पिजरे को तोड़कर निकल जाऊँगा, तो कच्चा ही चबा जाऊँगा, बोटी बोटी उड़ा दूंगा जसवन्त, तेरी ।"

लोगों ने कहा –"पागल के साथ यह राक्षस भी हो गया, मनुष्य को कच्चा चबाने वाला ।

शेर पिंजरे में बन्द होकर गीदड़ होने लगा । नरेश ने एक महीने के बाद जसवन्त सिंह जी की पट्टेदारी छीन ली । अब उनके पास सिर्फ एक ग्राम रह गया था, जो आज भी उसके पास था ।

चंदा अब मृत्यु की गोद में तड़पती तड़पती सदा के लिये चली गई । मूलिया उसके अन्तिम दिनों में ईश्वर से यही प्रार्थना करता था –"भगवान ! ऐसे जीवन से तू उसको मौत ही दे दे ।"

जिससे एक बात करने के लिये तरसने वाला मूलिया उसकी मौत की कामना करने लगा । शायद मनुष्य के तन की ऐसी भयानक विकृति और विभीषिका देखने को मूलिया तैयार नहीं था ।"

अतीत की तमाम बातों को मन ही मन दोहरा करके ठाकुर सा बुद-बुदाये –"गत सालों में हमने कितने महान परिवर्तन देखें ? मूलिया मर गया । खानदानी दुश्मन केसरी सिंह जी की गर्दन उड़ गई । नाायण सिंह हमारे पंजे से निकल भागा । बड़ी ठकुराइन मर गई । न जाने क्या क्या हुआ ? पर हमारे गाँ वहमें नहीं मिले ।"

मेघला ठाकुर सा के पाँव दबाता दबाता थक गया था । ठाकुर सा का बुदबुदाना सुनकर वह पूछ बैठा –"क्या मैं जाऊँ ?"

"क्यों ?"

"ठकुराइन सा के कमरे में दीया जल गया है ।"

"तो क्या हुआ, दीया तो हर रोज ही जलता है ?"

"पर आप ?"

"ज्यादा बकबक मत किया कर ! ... ...पहले यह बता कि आजकल अपने गाँव में सबसे चोखी छोरी कौन है ?"

"अपने गाँव में तो आजकल दो ही लड़कियों की धूम मची हुई है। पहली तो है रेवतदान नाई की लड़की रधिया।.....ठाकुर सा ! क्या गजब का जौवन है उस का, और रंग तो दूध सा सफेद जानिये।"

"और दूसरी ?"

"मैना !....पर वह तो ठीक ठीक है ?"

"रधिया !"– ठाकुर सा धीरे से बोले। बोलने के साथ ही उनके मन की हविस आँखों में चमक उठी। उनका विवेक वासना के उन्माद में विस्मृत हो गया। ऐसा मालूम पड़ता था कि ठाकुर सा वृद्धावस्था में और तीव्र कामुक होते जा रहे हैं जैसे नर की आयु बढ़ने के साथ उसकी वासना भी बढ़ती जाती है।

मेघले को स्पन्दन हीन सा बैठा देखकर ठाकुर सा ने उसको जाने की आज्ञा दी और स्वयं एक बार पुनः बड़बड़ाये –"रधिया ! और ठकुराइन !"

नई ठकुराइन का नाम वत्सला था। गोरा रंग और उस पर बिजली सा चंचल स्वाभाव ! वैभव की संस्सृति में जिसके संस्कारों ने प्रश्रय पाया, जीवन पला, वह वत्सला सोने के पूर्व एक कसूम्बे का जाम पिया करती थी। उसके पीने के पश्चात उसके नयन आरक्त हो उठते थे। अंग-अंग में मस्ती छा जाती थी तब वह कभी कभी ढोकलियों का गीत सुनती थी।

और ठाकुर सा के आगमन पर उनकी आज्ञा को शिरोधार्य समझ कर दीया बुझा दिया करती थी।

लेकिन ठाकुर सा की प्रोढावस्था का मन्द प्रवाह वत्सला के उद्याम यौवन की बोझिल तरणी को नहीं बहा सका तो उसने लधिये पर डोरे डालने प्रारम्भ किये। उसने संकेतों में लधिये को समझाया भी; पर ठकुराइन को माँ के बराबर समझने वाला वह ग्रामीण मूढ़ व्यक्ति प्रेम के संकेतों को माँ की विशेष कृपा के रूप में जान पाया। वह अपने आस पास के गोलों और गोलियों को कहा करता था–"ठकुराइन सा मुझे बहुत चाहती हैं।....मुझपर सबसे अधिक दया रखती हैं।"

मैड़ी में प्रकाश अब भी उसी भाँति खिड़की से झाँक रहा था।

उपेक्षित और अतृप्त वत्सला का यौवन तरस रहा था। वह उठी और ठाकुर सा को देखा। अब ठाकुर सा निद्रा में निमग्न थे।

तब उसने लधिये को पुकारा।

लधिये ने आकर प्रणाम किया –"हुक्म ठकुराइन सा।"

"भीतर आ जाओ।"

लधिया भीतर आ गया।

ठकुराइन सा उसे समझाती हुई बोली –"लधिया ! क्या तू मेरे इशारों को समझता है ?....नहीं, तो सुन–ठाकुर सा मेरे हृदय की आग को ठंडी नहीं कर सकते और तू ठहरा एकदम लट्ठ-भारती० ! न संकेत में समझता है और न बोली में। इस वास्ते आज तुम्हें यहाँ बुलाया है। एक बात का ध्यान रखना कि जो मैं बातें कहूँ, वे बाहर नहीं जानी चाहिये।"

लधिया यह सुनकर अवाक सा ठकुराइन को देखता रहा। उसकी आँखें विस्फरित हो गई थीं और शरीर जड़वत। हकलाता हुआ बोला– "ठकुराइन सा ! आपका चित्त तो ठीक है ! आप तो हमारी माँ के बराबर हैं। यह आप मुझे क्या कह रही हैं ?"

यह सुनते ही ठकुराइन पाँव के नीचे दबी साँपिन की भाँति फुत्कार उठी और एक चाँटा मार दिया लधिये के गाल पर। लधिया तिलमिला उठा। अपन हाथ से अपने गाल को मलता रहा।

"अब बोल, जो मैं कहूँगी वही करेगा या.....?"

".....।" लधिये ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह सोचन लगा। उसकी आँखें मानो कह रही थीं–जौहर में जलने वाली पद्मिनी की यही वंशज है ? पन्ना धाय की पिछली पीढ़ी क्या यही है ? हाड़ी रानी

० फूहड़।

के उत्सर्ग का अवशेष यही है। औरंगजेब की सत्ता से टकराने वाली क्षत्राणी चंचल कुमारी की क्या बहिन यही है जो अपना गौरव, पद, प्रतिष्ठा, और मर्यादा को त्याग कर पर पुरुष के साथ.....?

"क्या गूंगा हो गया है ?"

"नहीं ठकुराइन सा, पर मुझ से ऐसा अधर्म नहीं हो सकेगा ?"

वह उसकी ओर दयाभरी दृष्टि से देखने लगा।

"फिर पछताओगे ?"

".....!" – लधिया चुप रहा।

"कमीने, नीच, पापी।" – और लधिये के देखते देखते ठकुराइन चीखें मारने लगी। उसकी चींख सुनकर ठाकुर सा घबराये हुए मैड़ी में आये। पूछा तो ठकुराइन ने बताया –"यह नमक हराम मेरी इज्जत लूटने चला आया है।"

"तो तूने इसे काट कर क्यों नहीं रख दिया ?" – और उसके बाद ठाकुर सा लधिये की ओर झपटे। निरीह लधिया काँप रहा था। गाली-गलौजों के बाद ठाकुर सा ने उसको इतना पीटा कि वह अधमरा सा हो गया। उसके तन बदन पर कोड़ों के नीले चिन्ह अंकित हो गये। वह तड़पता रहा, बिलबिलाता रहा और देखते रहे–सारे डेरे के व्यक्ति और अन्त में ठाकुर सा ने उसे तहखाने में बन्द कर दिया।

भयानक तहखाने में घुटती साँस थी। पीड़ा से व्याकुल लधिया पानी पानी चिल्ला रहा था। उसकी दुखभरी आवाज तहखाने की मजबूत दीवारों का वक्ष विदीर्ण करती हुई सारे डेरे में एवं शून्याकाश में गूंज रही थी। ऐसा प्रतीत होता था जैसे कि इस गुलाम की पीड़ित आत्मा के अभिशाप से, हृदयवेधक आह से कल एक भयानक विस्फोट होने वाला है।

तहखाने से आने वाली "पानी-पानी" की तीव्र वाणी क्रमशः क्षीण

होती गई, उस दीपक की भाँति जिसका तेल समाप्त हो चुका है और बत्ती भी अब जल चुकने को है ।

तभी तहखाने की ओर दो चरणों के बढ़ने की हल्की पग ध्वनि सुनाई पड़ी । बाद में फाटक के खुलने की खड़...ड़...ड़... की कर्ण अप्रिय खड़-खड़ाहट आई । डूबते को तिनके का सहारा मिल जाने पर उसके चेहरे पर जो आशा संचार होती है, ठीक उसी प्रकार के भावों का संचार हुआ प्यासे लधिये पर । वह चिल्लाया–"पानी-पानी" – चिल्ला कर जब उसने देखा तो किसी युवती की धुंधली आकृति उसे आती हुई दीख पड़ी । वह विह्वल सा हो उठा । आँखों में आँसू आ गये । वह तरस उठा –"पानी, पानी, मैं बहुत प्यासा हूँ ।"

तभी एक अपरिचित युवती ने एक हाथ से उसको अपनी गोद में बिठाया तथा दूसरे हाथ से वह उसे पानी पिलाने लगी । एक गिलास, एक साँस में ही पी गया लधिया । दुबारा उसने पानी और माँगा– "एक गिलास और, मैं बहुत प्यासा हूँ ।"

युवती ने लोटे के पानी से एक गिलास और भरा और उसे पिलाया । लधिया तब कुछ आश्वस्त होता हुआ बोला –"तू कौन है ?"

"मैं ।" – संगीत की झंकार की भाँति ये शब्द गूंज पड़े ।

"आप ! ठकुराइन सा.....आप !!" – वह हठात विलग हो गया ।

"बोलो, अब अपनी ज़िद् छोड़ोगे या नहीं ?"

"ठकुराइन सा !"

"तो जाओ, फिर इसी तरह मरो ।"

"नहीं, ठकुराइन सा, अब मैं आपकी बात मान लूंगा, आपके हुक्म की ताबेदारी करूँगा, आप जैसा कहेगी, वैसा ही करूँगा ।" – कहता कहता लधिया ठकुराइन के पाँवों से लिपट गया । ऐसे लिपट गया जैसे वह दो

पाँवों के बीच अपना अस्तित्व मिटाना चाहता है। अपनी आँखों के आँसुओं से उसने ठकुराइन के पाँवों को तरल कर दिया।

ठकुराइन ने उसे उठाया। प्यार से सहलाया। अपनी अंगुलियों को उसके घास के समान कठोर-रुखे कुन्तलों में उलझा कर शान्त स्वर में कहा –"लधिया तू बहुत चोखा है।"– उसकी माँसल भुजाओं को पकड़ कर वह नयन से नयन मिलाकर बोली – "तू बहुत तगड़ा है, तेरे अंग अंग से लहू चूता है, पक्का मोट्यार० है और ठाकुर ?"

ठकुराइन की आँखों में घृणा तैर उठी – "एक तो बुडढे है, इस पर गाँव की छोकरियों और गोलियों पर चौबीस पहर अपनी नीयत रखते हैं। फिर तू ही बता, मैं क्या करूँ ? मुझे तो वे कहते है कि अब तू पुरानी पड़ गई है।"

"आप जो कहेगी, मैं मान लूगा, पर आप सबसे पहले मुझे यहाँ से निकाल दीजिये। ओह ! कितना डरावना है ?"

"सवेरे निकाल दूंगी, चिता न कर, हाँ, यदि ठाकुर सा तेरे से पूछे, कि तुम्हें पानी किसने पिलाया है, तो कहना मैं नही जानता। हाँ, इतना मुझे अवश्य मालूम है कि कोई चार भुजावाली औरत ने मुझे पानी का गिलास दिया था। समझ गये ?" – उसने हाथ में लोटा और गिलास उठा लिया।

".....।" – गर्दन को हिलाकर हाँ की स्वीकृति दी लधिये ने।

ठकुराइन ने उसके गालों का एक चुम्बन लिया और मन ही मन यह सोचती हुई तहखाने के बाहर हो गई – "पहले जब राजपूत पर स्त्री को अपनी माँ-बहिन समझते थे तो उनकी पत्नियाँ भी पतिव्रत धर्म का पालन अपने प्राण देकर भी करती थी।"

ठकुराइन वहाँ से मैड़ी में आई जहाँ ठाकुर सा जोर जोर की खर्राटें भर रहे थे।

०जवान।

रात जवान थी, तारे प्रौढ थे, और वातावरण शुष्क !

ठकुराइन ने एक बार छत पर आकर उन सभी प्रकृति के तत्वों को अर्थभरी दृष्टि से देखा और तब ठाकुर सा से सटकर सो गई। ठाकुर सा ने अपनी करवट दूसरी ओर बदल ली।

सोते सोते एक घंटा बीता ही था कि ठकुराइन जोर की चीख मार कर हड़बड़ा उठी। ठाकुर सा इस अप्रत्याशित परिवर्तन से हक्के बक्के हो गये। भय से काँप कर सावधान हुए—"क्या बात है ठकुराइन सा ?" — उन्होंने तुरन्त दीया जलाया।

"....." — ठकुराइन हुँ-हूँ करती हुई हुक्कारने लगी। उसकी आँखे फटी हुई थी। उसने अपने दोनों हाथ ऊँचे उठाकर, उन्हे विचित्र मुद्रा मे हिलाने प्रारम्भ किये। कमर के ऊपरी भाग को इस तरह हिलाना-डुलाना प्रारंभ किया कि मुह धरती का आलिगन करने लगा।

ठाकुर सा समझ गये कि ठकुराइन के 'घट'० में कोई देवता आ गये हैं। अतः तुरन्त हाथ जोड़ कर बोले —"महाराज आप कौन है ?"

"मैं...?..... मैं चार भुजावाली विकराल देवी हूँ जसवन्त ! तू मेरा सपूत होकर पाप कर रहा है ! पाप !"

ठाकुर सा की तर्जनी उनके अपने होठ पर थी। इतने कठोर कृत्रिम श्रम तथा आकुलता की पराकाष्ठा के कारण ठकुराइन के चन्द्रमुखी आनन पर श्वेदकण उभर आये थे। साँस की गति इतनी तीव्र हो गई थी कि नथुने आवाज करने लगे थे। ठाकुर सा की शंका बढती ही गई। भय के कारण वे आकुल-व्याकुल हो रहे थे। कुछ कहने के लिये उद्यत हुए कि ठकुराइन के घट मे आई देवी पुनः भड़की —"चुप रह, पापी चुप, तेरे डेरे मे ऐसा अन्याय, ऐसा अत्याचार, निर्दोप-निरीह प्राणी को तहखाने मे बन्द करके पानी-पानी के लिये तरसाता है !"

"पर मातेश्वरी उस पाजी ने...!"

---

० प्राण।

"पाजी कहकर मेरे क्रोध को मत भड़का ! उसने मोहवश तेरा कसूम्बा चुरा कर पी लिया था, इस कारण वह अपना होश-हवास खो बैठा और अनजाने में ऐसी कुकर्म कर बैठा, पर उसका मन गंगा की भाँति शुद्ध है। जा, छोड़ दे, जल्दी से उसे छोड़ दे, वह तो ठकुराइन को माँ समझता है,.....माँ !"

"जो हुक्म मातेश्वरी ! – ठाकुर सा ठकुराइन के चरणों में लोट गये। माता ने आशीर्वाद दिया – "जुग जुग जीओ मेरे लाल, दूध नहाओ, पूतो फलो।"

ठाकुर सा की आत्मा प्रफुल्लित हो गई। उनका रोम रोम पुलकित हो उठा –"खम्मा ! घणी घणी खम्मा माँ ने !!"

दो क्षण बीते ही होंगे कि एकाएक ठकुराइन ने घूंघट निकाल कर हड़बड़ा उठी। शिथिल, शान्त, मौन होकर इस भाँति शय्या पर पड़ गई जैसे वह युगों से रुग्ण है।

ठाकुर सा ने ठकुराइन के सिर पर प्यार से हाथ सहला कर कहा– "कुलदेवी की असीम कृपा हम पर होने लग गई है ठकुराइन सा। बेचारा लधिया निर्दोष है, मैं जाकर उसे अभी मुक्त करता हूँ।.... मातेश्वरी कहती थी कि वह आपको माँ के बराबर मानता है।"

"....." – ठकुराइन सुस्त सी अपने इस नाटक की पूर्ण सफलता पर गर्व कर रही थी और स्वयं उठकर ठाकुर सा के साथ तहखाने की ओर चलने लगी।

तहखाने के खुलने की ध्वनि ने लधिया को सावधान किया। उसने देखा कि ठाकुर सा हाथ में दीया संभाले आ रहे हैं–ठकुराइन के साथ। एक पल के लिये उसका रोम रोम भय से सिहर उठा। माई-बाप कहकर धड़ाम से गिर कर ठाकुर सा के चरणों से लिपट गया।

ठाकुर सा ने उसे उठाया। अपने सम्मुख खड़ा किया – "पानी पीयेगा ?"

"नहीं, नहीं, पानी मैंने पी लिया ।" – घबरा गया लधिया ।

ठाकुर सा स्तंभित हो गये । बन्दूक से छूटी गोली की भाँति ठकुराइन उन दोनों के बीच में आ गई । लधिये को ठाकुर सा की दृष्टि बचाकर कटाक्ष किया –"शायद कुलदेवी ने आकर पिला दिया हो ?"

ठाकुर सा हर्ष से सीना फूलाते हुए बोले – "तू बड़ा ही भाग्यवान है लधिया कि तुम्हें कुलदेवी ने अपने हाथ से पानी पिलाया ।"

"ऐसा कहकर आप मेरे सिर पर पाप मत चढ़ाइये, मैं तो आपका चाकर हूँ, आपकी चाकरी करके अपने जीवन को धन्य बना लूंगा ।" – लधिये ने ठाकुर सा को हाथ जोड़ दिये ।

तीनों तहखाने के बाहर आ गये ।

तब ठकुराइन के अधरों पर, उन अतृप्त अधरों पर जो किसी के चुम्बन के लिये बहुत दिनों से बेचैन और चिर प्रतिक्षित थे –एक कुटिल मुस्कान थिरक उठी ।

उस दिन के बाद ठाकुर सा की अनुपस्थिति में वीरांगना वत्सला अपनी अतृप्ति को लधिये की तप्त साँसों से तृप्त किया करती थी ।

जीवन धीरे धीरे जर्जरित होने लगा ।

क्षत्रियों की सभ्यता-संस्कृति विकृति के आवरण में आवेष्टित होकर विनाश की ओर अग्रसर होने लगी ।

७

दोनों गाँवों के बीच जो गोचर भूमि पड़ती थी, उस पर किसी भी ठाकुर का अधिकार नहीं था । गाँवों की गायें यहाँ आकर चरती थीं क्योंकि इस भूमि पर घास अधिक मात्रा में उत्पन्न होती थी ।

ठाकुर केसरी सिंह के गाँव के चरवाहे अपने पशुओं को लेकर इस गोचर भूमि पर निर्भय होकर विचरते रहते थे क्योंकि वे नारायण सिंह के आतंक से भयभीत नहीं थे। कभी कभी वे चरवाहे ध्यान मग्न होकर उन बकरियों के पंजों की सच्चाई निरखा करते थे जो पंजों के बल पर कंटीली झाड़ियों पर चढ़ कर पत्तियाँ खाती थीं।

मोहन केसरी सिंह जी के गाँव का रहने वाला चरवाहा था। मन का मौजी, यह सौन्दर्य सम्पन्न युवक बंशी का राजा था। जब वह उसकी धुन पर लोक गीत का स्वर लहरी छेड़ता तो सारा वातावरण मुग्ध हो उठता था।

गोचर भूमि के बीचो बीच जहाँ घनी भयावह झाड़ियाँ थीं, उनके मध्य एक झौपड़ी बनी हुई थी, उस झौपड़ी में ठाकुर जसवन्त सिंह जी का भाई नारायण सिंह रहता था। नारायण सिंह को झौपड़ी में कटार थी, तलवार थी और भाला था। ये सब मोहन के प्रदान किये हुए पुरस्कार थे जो नारायण सिंह की चौसठ घड़ी रक्षा किया करते थे।

नारायण सिंह जैसे क्रूर व्यक्ति की अपरिमित अनुकम्पा का मोहन और रधिया पर होना भी एक रहस्य था। न जाने नारायण सिंह की आकृति की हिंस्त्र भावनायें मोहन और रधिया को देखकर कहाँ लुप्त हो जाती थी, पता नहीं। तत्काल नारायण सिंह के चेहरे पर सहज मानव भाव की लहरें दौड़ पड़ती थीं, उनके सूखे–धूल धूसरित होठों पर एक मुस्कान, ऐसी मुस्कान जिसमें व्यथा सन्निहित थी, क्षणिक प्रसन्नता का आवरण लिये नाच उठती थी।

मरुभूमि का दोपहर !

रेतीले टीलों पर धूप पुर्ण रूप से विस्तृत हो गई थी। गोचर भूमि की पगडंडी पर रधिया अपनी गाय गोरी की पूंछ पकड़े मस्ती से झूमती हुई मधुर स्वर में गुनगुनाती हुई आ रही थी। उसके बालों की लटें उसके सुस्मित सुडौल कपोलों पर तर्कजाल सी छाई हुई थीं। चेहरे पर

अल्हड़ता की निश्चितता थी। उसका उठता हुआ कदम उसके अन्दाज का प्रतीक था।

वह गा रही थी–

"तावड़िया धीमा पड़ज्या रे
सूरज बादल में छिपज्या रे"०

और मोहन !

रधिया की प्रतीक्षा में आकुल लहलहाती बेर की झाड़ी की छाया में बैठा था। हर क्षण वह दीर्घ उश्वाँसें छोड़ रहा था। कभी कभी अपनी एकान्त की साथिन लकड़ी को झाड़ी की टहनी से टकराने लगता था, कभी कभी उकता कर पोटली में से रुखी बाजरी की मोटी रोटी के टुकड़े तोड़ कर खाने लगता था।

संगीत सी मधुर क्षीण हँसी ने मोहन की आकुलता में प्रश्न खड़ा कर दिया। वह सोच बैठा – "रधिया आ गई है क्या ?" – पर जैसे ही उसने दृष्टिपात किया तो चारों ओर निर्जनता ही दृष्टिगोचर हुई। तब उसने अपने आप से कहा –"यह तो कोरा बहम है।"–और फिर वह इस तरह निराश हो गया जैसे कोई जीवन की अनेकानेक निराशाओं के थपेड़ों से व्यथित हो उठा है, हताश हो उठा है।

अधिक देर तक मौन रहना उसके लिये दूभर हो रहा था। अतः उसने अपनी बाँसुरी को अधरों से लगाया। उसने उस पर एक धुन छेड़ी।

रधिया आ गई थी। उसने दूर झाड़ी की ओट से मोहन को देखा– अधरों पर बंशी को लगाये उसे मोहन भगवान 'मोहन' सा लगा जिसकी अलौकिक बंशी के संगीत ने अविराम अमृतमय गुंजार किया था–गोकुल की कुँज गलियों में। रधिया के हृदय ने चाहा कि वह जाकर उसकी गोद में बैठ जाये–ठीक अपने घर में लगे राधा-कृष्ण के चित्र की भाँति। पर

० लोक गीत।

उसके हृदय को एक बात की शंका हुई कि उसके जाने पर मोहन बाँसुरी बजाना बन्द कर देगा इसलिये वह वही पर छिप गई ।

मोहन ने इहलोक मे उस स्वर्गीय अविस्मरणीय जन-गीत की स्वर साधना करनी प्रारम्भ की जिसमे किसी नारी की विकल वेदना साकार होकर गुजित हुई थी । उस वेदना मे प्रेम के उस उच्चादर्शों की कल्पना थी जो शायद भारतीय संस्कृति की अपनी असाधारण देन है ।

साधना साधक द्वारा शनैः शनैः मुखरित होने लगी ।

गीत के शब्द संगीत के माध्यम से और स्पष्ट हो गये ।

रधिया राधा सी अपने 'स्वय' को विस्मृत कर संगीत की मधुरता मे एकाकार हो गई ।

बाँसुरी के गीत के शब्द रधिया के कानो मे अमृतमयी पवन की भाँति गूज गूज कर जा रहे थे । गीत के शब्द थे–

"नाग जी रे,
भूलू छू बैरी थाँरों नाँव रे
कोई सूरतडी भूली नही जावे,
हो नाग जी,
घडी अेक घुडला घेर म्हाँरा नागा रे,
घूघट री छैयाँ करूँ
हो नाग जी,
नागा नागर बेल है, पसरे पण फूलै नही
बालपणे री प्रीत है, बिछडै पण भूलै नही,
हो नाग जी.....
घडी अेक घुडल्या घेर म्हाँरा नागा रे
घूघट री छैया करूँ
हो नाग जी",

सगीत के आकर्षण मे विमुग्ध राधा कृष्ण की बशी की दीवानी होकर

मोहन के सम्मुख आ गई। मिलन ने विरह के संगीत में अवरोध उत्पन्न कर दिया। बाँसुरी अधरों से विलग हो गई। संगीत रुक गया। स्वप्न भंग हो गया। रधिया अवश हो कह उठी–"बंशी बजाओ, मोहन बंशी बजाओ, कितनी मीठी है इसकी तान ! बजाओ मोहन, बजाओ न !"

बंशी पुनः अधरों से लग गई। कृष्ण की राधा मोहन की गोद में निढाल सी हो गई। स्वर गूंजित होने लगा–

"नागा नागर बेल है, पसरै पण फूले नहीं,
बालपणे री प्रीत है, बिछड़ै पण भूलै नहीं।
हो नाग जी.....+

धीरे धीरे बंशी का स्वर शांत हो गया।

"मोहन ! तू बंशी क्या बजाता है, मुझे तो बस में कर लेता है।"

"झूठी कहीं की ?"

"मैं सच कहती हूँ मोहन, मैंने कुछ और सोचा था।"–और उसने मोहन की वक्ष पर अपना सिर रख दिया। नेत्र मूंद कर इस तरह भाव-शून्य हो गई जैसे वह मोहन को परेशान करने के पूर्व निश्चय को साकार देखना चाहती है उसने देखा–

'मैं गोरी को छोड़कर मोहन की पीठ पीछे शब्दहीन डग भरती आ रही हूँ। मैंने अपने दोनों हाथों से अपने लहँगे को पकड़ रखा है जिससे मेरी गोरी चिक्कण पिंडलियाँ दीख रही है। मेरे नयनों में खुशी नाच रही है, होठों पर मौन हँसी जिसकी आवाज को मैंने दाँतों द्वारा होठों को दबा कर काबू में कर रखा है।

मोहन धरती पर पड़े कंकड़ों को उठा उठा कर यूं ही फेंकता जा रहा है। वह एक कंकड़ फेंक कर दूसरे कंकड़ से उसी पहले वाले कंकड़ को निशाना बनाने की फिजूल चेष्टा कर रहा है। इस बात से वह किसी स्वार्थ की सिद्धि नहीं कर रहा है, केवल समय बीता रहा है।

+ नागजी–साभलदे–एक प्रेम सम्बन्धी लोक कथा।

मोहन आह छोड़ता है ।

मेरे फूल से कोमल–गर्म हाथ उसकी आँखों को बन्द कर लेते हैं। वह चौंक उठता है –कौन है ?

मैं मौन हँसी हँसती हूँ ।

–जो है, वह बोलता क्यों नहीं ।

मेरी आँखों में प्रसन्ता का ज्वार सा आ जाता है। मोहन को गुस्सा आ जाता है। गुस्से से जबान खोलने के लिये तैयार होता है कि बेईमान गोरी रंभा देती है। सारा भण्डाफोड़ हो जाता है ।

प्यार उसके अधरों पर बोल उठता है –"रधिया !"

"मोहन !"–अपने मुंह को मोहन के मुंह के सन्निकट लाकर रधिया बोली। स्वप्न टूट गया। रधिया के नयनों में प्रेम उमड़ पड़ा।

मोहन ने नजरें घुमा कर कहा –"मैं तेरे से नहीं बोलूंगा !"

"क्यों रे ?"

"यह तू मुझसे पूछती है ?"

"समझी, मैंने अबेर कर दी, इसी से तू नाराज हो गया है। पर मैं क्या करती ? बाबा ने मुझे आज तड़के ही एक जजमान० के यहाँ भेज दिया था। और वह जजमान ! बाप रे बाप, इतना बेदरदी निकला कि मेरे सामने बर्तनों का ढेर लगा दिया,माँजते-माँजते यह वक्त हो गया।" –रधिया ने कहते कहते मोहन को देखा। उसकी दृष्टि में विश्वास था –"और जब मैं उठकर आने लगी तो पीछे से आकर वह निगोड़ा फिर बोला–"यह कढाई और मल दे, अब तू ही बता मैं कैसे आती ? और यदि मेरे पर भरोसा नहीं है, तो गोरी से ही पूछ ले।" –कह कर रधिया गोरी के समीप गई। उसकी गर्दन में अपनी बाहें डाल कर बोली–"क्यों गोरी, क्या मैं झूठ बोल रही हूँ ?"

---

० यजमान ।

गोरी ने गर्दन हिला कर रंभा दिया ।

"देखा मोहन ! गोरी कहती है कि रधिया कभी भी झूठ नहीं बोलती ।"

मोहन ने मुस्कराते हुए कहा –"रधिया सबसे पहले रोटी खा ले, फिर हम नारायण बाबा के यहाँ चलेंगे । उन्होंने तुम्हें याद किया है ।"

"हम जरूर चलेंगे, पर पहले पेट पूजा फिर काम दूजा, क्यों ?"

"हाँ-हाँ !"

"पर,.....मैं रोटी नहीं खाऊँगी ।"

"क्यों ?"

"मुझे रोटी भाती नहीं ।"

"तो तेरे वास्ते यहाँ लड्डू कहाँ से लाऊँ ?"

"फिर मैं खाऊँगी नहीं,.....सच बताऊँ, आजकल मुझे भूख लगती ही नहीं ।"

"अचरज की बात है, कि यह पट्ठी तुम्हें लगती ही नहीं पर हमने तो सुना है कि भूख किसी की भायली नहीं होती । वह तो बराबर काया के पीछे छाया सी लगी रहती है ।" – व्यंग था मोहन के स्वर में ।

"लगती रहती है, तो लगने दे, तेरा क्या लिया ?"

रधिया रूठ कर दूसरे टीले की ओर भाग गई ।

दूसरे टीले की ढलान पर बहुत सी बेर की झाड़ियाँ थीं । उन झाड़ियों के ईर्द-गिर्द बहुत सी बकरियाँ चर रही थीं । रधिया उन्हीं बकरियों के झुंड की ओर नाठी० ।

पीछे पीछे मोहन के पुकारने की आवाज आ रही थी –"रधिया, ऐ रधिया, सुन तो ।"

और रधिया लपक कर बकरियों के झुंड के बीच लुक गई । मोहन

० दौड़ी ।

अवाक् सा देखता रहा। फिर बड़ी सावधानी से उस झुण्ड की ओर बढ़ा। और रधिया सोच रही थी –"मैं आज मोहन को खूब छकाऊँगी, खूब तंग करूँगी।" – तब वह अपने को विशेष सुरक्षित रखने के लिये धरती पर लेट गई। उसके चारों ओर बकरिया थी।

मोहन झुड के समीप आकर पुकार उठा –"रधिया, ऐ रधिया, मैं कहता हूँ कि तू सीधी सीधी सामने आ जा वर्ना तेरी वह दुर्गति बनाऊँगा कि छट्टी का दूध याद आ जायेगा।"

इस पर रधिया पेट के बल सोती हुई–जीभ निकाल करके उसने मोहन को अंगूठा बता दिया जैसे वह कह रही है–तेरे से डरे मेरी जूती।

मोहन शिकारी की दृष्टि से रधिया को खोज रहा था। अप्रत्याशित उसे दो पाँव नजर आये। वह चुपचाप उसकी ओर बढ़ा। समीप पहुँच कर उसने गोरे गोरे पाँवों को दबा लिया। रधिया चौंक उठी– "ऊँई माँ !"

"अब बोल, माँ की बच्ची, माँग माफी, नही तो तेरे पाँव ऊँचे और सिर नीचा कर दूंगा।"

रधिया की अत्यन्त चिंतित अवस्था थी। मोहन ने उसके दोनों पाँव इतनी मजबूती से पकड़ रखे थे कि वह कमर के बल सो ही नहीं सकती थी। अतः उसने माफी माँग ली।

झगड़ा मिट गया।

तब रधिया उसके रुखे बालों में अपनी अंगुलियाँ उलझाती हुई प्यार से बोली –"तू बड़ा बदमाश है, अभी से मुझे इतना सताने लग गया है, तो व्याह के बाद तू मेरी क्या गत बनायेगा, भगवान जाने ?"

"व्याह हो जाने के बाद तो मैं तुम्हें मौचे० के नीचे पाँव भी रखने नही दूंगा।"

---

० खाट।

"और रोटियाँ आकर मेरी माँ पका देगी, क्यों ?" – हठात पूछा रधिया ने ।

"तेरी माँ क्यों, रोटियाँ पकायेगी तेरी गोली ।"

"उसके लिये टक्के-पैसे कहाँ से आयेंगे ?"

"टक्के-पैसों की चिंता तो मिनखों को रहती हैं, लुगाई जात को इन सबसे क्या पड़ी ?"

"फिर तो तेरे पास तेरे बाप का कोई गड़ा धन है ।" – रधिया ने आँखें मटकाई ।

मोहन भी उसके उपहास को जान गया था । अतः वह भी मजाक से ही बोला –"हाँ-हाँ ! मेरे घर के पूरबी कोने में दो कलस धन के गड़े पड़े हैं । जब चाहूँगा तो खोद कर निकाल लूंगा ।"

रधिया अपनी दृष्टि दूसरी ओर घुमा कर बोली – "फिर तू किसी राजा की कन्या से ही व्याह क्यों नहीं कर लेता ?"

"यह नहीं हो सकता ?" – दृढ़ता से कहा मोहनने ।

"क्यों ?"

"अरी ! दिल लगा गधी से तो परी क्या चीज है ?"

इस बात पर दोनों खिलखिला कर हँस पड़े ।

रेत के टीलों से धीरे धीरे धूप ढल कर ढलान को पार कर चुकी थी। धूप के आने के कारण हवा का प्रभाव भी परिवर्तित हो चुका था, अर्थात हवा ठंडी हो गई थी ।

चरने वाले पशुओं के पेट भर जाने पर वे रंभाने लग गये थे। बकरियाँ और भेड़ें भी मैंSSS मैंSSS करने लग गये थे ।

मोहन की अंक में अलस सी सोती हुई रधिया बोली –"अब मुझे भूख लग गई है ।"

"तो फिर दूध पिया जाये ।"

"किसका ?"

"इतनी गायों में से किसी एक का ।"

"....." – रधिया कुछ बोलने के लिये आतुर हो रही थी कि मोहन ने उसका हाथ पकड़ कर अपने संग घसीटना प्रारंभ किया। रधिया जबरदस्ती सी चलती हुई पूछ रही थी–"कहाँ ले जा रहे हो,छोड़ो न मोहन,.....अरे मैं पूछती हूँ कि मुझे कहाँ ले जा रहा है।" – पर मोहन उसे घसीटता-घसीटता एक काली गाय के समीप ले गया। उसके स्तनों के समीप रधिया को उकड़ूं बैठाता हुआ बोला –"देख रधिया ! मैं गाय को दूह कर धार बाँधता हूँ और तू मुंह खोलकर गट् गट् पीती जा।" – अब रधिया सारा मामला तुरन्त समझ गई। वह भी संभल कर उकड़ूं बैठ गई। उसने अपना मुह खोला। खुले हुए मुंह ओर छितरे हुए काले कुन्तलों ने क्षण भर के लिये मोहन को उसे एकटक देखने के लिये विवश कर दिया। वह देखता रहा–उस भोले चेहरे को जिस पर रूप बरस रहा था। यदि रधिया धीरे से उसके पाँव में चुटकी नही भरती तो शायद मोहन उसे अपलक दृष्टि से देखता ही रहता। चुटकी की पीड़ा ने मोहन को जगा दिया, वस्तु जगत में ला पटका। रधिया मुस्करा पड़ी उसके मुस्कान भरे अधरों का माधुर्य मोहक बन गया।

मोहन ने गाय को दूहना आरम्भ किया। दूध की धार सीधी रधिया के मुख में पड़ रही थी और वह गट् गट् दूध पी रही थी। जैसे ही रधिया ने धार रोकने के लिये मोहन को दायें हाथ से संकेत किया वैसे ही मोहन ने जान बूझ कर दूध की धार को रधिया के चेहरे पर फैला दिया।

रधिया की आकृति दूध के छीटों से उपहास भरी तथा भयानक हो गई। दूध के छींटे केवल उसके चाँद से मुखड़े पर नही पड़े थे बल्कि उसके रूखे कुन्तलों पर मोतियों के समान बिखर गये थे। और बिखर कर ऐसे लगते थे जैसे प्रभात-बेला में हरितिमा पर ओसकण पड़े रहते हैं।

उन छीटों को देखकर एक बार मोहन जोर से हँस पड़ा –"तू बहुत चोखी लगती है रधिया।"

उसके कथन की विपरीत प्रतिक्रिया हुई। रधिया उस आहत सैनिक की भाँति तड़प उठी जो अपने विपक्षी पर वार करने हेतु क्षण भर स्थिर होकर विचार करता है।

मोहन उसकी विचित्र भाव भंगिमा को देखकर सहम गया। कुछ बोलना चाहता था पर बोला नहीं। सरल स्वभाव के बालक की भाँति वह रधिया को देखता रहा और रधिया उसे शिकारी की भाँति घूर रही थी। उन दोनों की आँखों में विचित्र संघर्ष था।

तब रधिया बिना कुछ बोले ही एक ओर चली। उसने अपनी ओढ़नी के पल्ले से अपने चेहरे की धूल को झाड़ा, दूध के छीटों को पोंछा। एक बार मोहन को नाराजगी से देखा तो मोहन ने मुस्करा दिया पर वह रुकी नहीं।

थोड़ी दूर पर गोरी पेट पूजा करके जुगाली कर रही थी। रधिया ने उसकी पूंछ पकड़ी तो वह सावधान हुई। पूंछ मरोड़ी तो उठ गई। थपथपाई तो अंगड़ाई लेकर चलने को उद्यत हुई।

रधिया ने गोरी को सम्बोधित करके कहा–"चल गोरी चल, हमको देर हो रही है।.....चल न, देख तो सही, कौन आ रहा है हमारे पीछे-पीछे,.....मैं बताऊँ–नटखट मोहन !"

मोहन यह सुनकर तुरन्त रधिया के समीप आया। गोरी को सम्बोधित करता हुआ बोला –"तू ही बता गोरी, क्या 'मोहन' नटखट नहीं था, गोपिकाओं की मटकियाँ नहीं फोड़ता था, ग्वालिनों से छेड़छाड़ नहीं करता था?.....तू ही बता, वह राधा को कितना तंग करता था, तो भी क्या वह इस तरह रूठ जाती थी ?"

मोहन ने वाक्य समाप्त करके ज्योंही देखा तो रधिया से उसकी आँखें टकरा गईं। रधिया की आँखों में रोष की जगह प्रेम उत्पन्न हो रहा था।

"गोरी, जरा इस मनचले मोहन से कहो तो कि जब राधा रूठ जाती थी तो मोहन उसे कितना मनाता था ?"

"राधा !"—मोहन ने लपक कर राधा का हाथ पकड़ लिया—"तू रूठ गई है ?"

"नहीं मोहन, पर तू ने आज मुझे बहुत ही तंग किया है।"

"तंग करने में मुझे बड़ा मजा आता है।"

"मेरी जगह पर यदि तू होता तो मालूम पड़ता, छक्कड़ी घुम हो जाती।.....आज तो मुझे बड़ी रीस आई थी कि तेरे से जो मोह लगा हुआ है, उसे तोड़ लूं, तेरेसे मिलना-जुलना बन्द कर लूं पर.....।"

"रधिया, जरा मेरे सामने देखो तो !"

और रधिया ने मोहन के सामने देखा। मोहन ने उसे बाहों में भर कर प्यार से कहा —"तू हँसी हँसी में रीस कर बैठती है, यह आदत अच्छी नहीं।"

तब रधिया के कपोलों पर मोहन के अधर अनायास ही जा टिके।

८

बेटे लधिये और माँ ठकुराइन का जीवन उस धारा की भाँति प्रवाहित हो रहा था जो आबद्ध गति से निर्द्वन्द्व बहा करती है।

ठाकुर सा जो कुछ दिन पूर्व लधिये के साथ एक गोले सा व्यवहार-बर्ताव करते थे, बात-बात पर गुड़कियाँ दिया करते थे, थप्पड़ मार दिया करते थे, आजकल सहानुभूति का बर्ताव किया करते थे। जिसके कारण आजकल लधिये को अपने हाथ से खाना पकाना नहीं पड़ता था, उसे वहीं खाना खाने को मिलता था जो स्वयं ठाकुर सा के लिये बनता था।

उसके सोने व रहने का प्रबन्ध भी नये सिरे से हो गया था—ठकुराइन के कमरे के ठीक सामने वाले कमरे में ।

बीच-बीच में ठकुराइन के घट में कुलदेवी आ-आकर ठाकुर सा को सौन्त्वना देती रहती थी । पर जब कुलदेवी के मुखारविद मे ठाकुर सा ने यह सुना कि अब तुम्हें शीघ्र ही तुम्हारे खोये ग्राम प्राप्त होने वाले हैं, तब से उनकी प्रोढ़ता पर फिर मे जवानी आने लगी । आन-शान की अच्छी तरह रक्षा की जाने लगी । अब प्रभात-बेला उनके सामने जब तक हुक्का नहीं रखा जाता, तब तक वे बिस्तरा नहीं छोड़ते थे, रात को आकर कोई पाँव दबा कर कसूम्बे का पान नहीं कराता था तो उनकी राजपूती तलवार गोलों पर मौत की भाँति छा जानेको आतुर हो जाती थी । यह उनका कहना था कि गाँव की गरीब छोरियों के साथ रंगरलिया नहीं मनायेंगे तथा गोलियों के जीवन से नहीं खेलेंगे तो हमारे रौब का नगाड़ा मन्द पड़ जायेगा । यदि गाँवों वालों ने उनकी ख्वाहिशों को पूरा नहीं किया अथवा तनिक भी जी हुजूरी में गुस्ताखी की तो उनकी तलवार म्यान से बाहर निकलने को तड़प उठती थी ।

पर इन सब विकृतियों और झूठे दिखावे के नीचे विनाश का जो ज्वालामुखी दबा पड़ा था, वह फूट पड़ने को तैयार था । फूट कर वह अपनी आग से इन सामन्तों की संस्कृति-सभ्यता को जला डालने को आतुर था । क्योंकि ठकुराइन का लधिये के साथ अनुचित संबंध नैतिकता को भयानक चुनौती थी । माँ का बेटा, मां की पवित्र साध को अपनी प्राण रक्षा हेतु पूर्ण करता जा रहा था !

उस दिन चौपाल में ठाकुर सा खटिया पर बैठे बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे । उनके चारों ओर उनके अपने तमाम गोले बैठे ठाकुर सा की प्रत्येक बात पर दाद दिये जा रहे थे । ठाकुर सा कह रहे थे —"हम राजपूतों ने अपने वचनों, अपनी आन और अपने सम्मान के खातिर जान को सदा हथेली में रखा है ।...जानते हो तुम लोग, यदि हमारी ठकुराइनें

पर पुरुष को अपना नाखून भी दिखला दें तो हम उनकी गर्दन को धड़ से अलग कर देते हैं।"

इस बात पर लधिये को मौन हँसी आ गई। उस हँसी को ठाकुर सा ने देखा –"तू हँसा क्यों लधिया ?"

"इसलिये अन्नदाता कि यदि ईश्वर किसी को जन्माये तो आपके कुटुम्ब में, जिनकी इज्जत धर्म की भाँति बेदाग़ होती है।" – लधिये ने इतना कहकर के ठाकुर सा को हाथ जोड़ दिये। ठाकुर सा की आँखों में अहँकार उभर आया। हाथ मूंछों पर ताव देने के लिये उठ गय। और लधिया मन ही मन सोचने लगा –"ठाकुर सा कहते हैं कि हमारी ठकुराइनें पर पुरुषों को अपना नाखून भी नहीं दिखलातीं, और ये धर्म की ओट में नाक कटाने के काम भी कर लेती हैं, देवियाँ बोलाने लगती हैं, बेटा कहकर छाती से चिपका लेती हैं, अच्छी हैं आपकी रजपूतानियाँ !"

लधिया विचारों में खो गया। विचारों की तन्मयता के कारण वह अल्प-काल तक यह भी नहीं जान सका कि ठाकुर सा क्या कहते जा रहे हैं ? तभी ठाकुर सा की आज्ञा हुई –"तुम सब जाओ, अब हम अकेले में रहना चाहते हैं।"

सब लोग चलकर जाने लगे तो ठाकुर सा ने धीरे से लधिये को पुकारा –"लधिया !"

"हुक्म अन्नदाता !"

"मेघला कह रहा था, रेवतदान नाई की बेटी रधिया का जोबन जोरों पर है, इन्द्र की परी सी है, क्या यह ठीक है ?"

"हाँ अन्नदाता !"

"देख लधिया तू ठहरा हमारा पुराना गोला,इस बात की खबर किसी के कानों तक नहीं जानी चाहिये।" – ठाकुर सा ने लधिये को समझाया –"उसे किसी भी तरह तहखाने में ले आओ।"

"पर माई-बाप, वह छोकरी कौवे से चालाक और नीम सी कड़वी है !"

"हम इन बातों से नही घबराते, तू सोच लेगा तो सब कार्य आसान हो जायेगा, देख लधिया, भोग-विलास करना हमारी शान है और तू तो यह भी जानता है कि हम आदत से लाचार है ।"

"अच्छा अन्नदाता ! मै जतन करूंगा ।"

लधिया चला गया ।

ठाकुर सा के मुंह से निकल पड़ा –"रधिया !"

तभी संगीत सा मधुर स्वर ठाकुर सा के कानों में गूजा –"ठाकुर सा ने घणी घणी खम्मा !"

"कौन ?" – पलट कर देखा तो उनकी आँखें आगन्तुका के रूप पर जम गई –"रधिया ! आओ रधिया !"

रधिया ने पास आकर कहा–"बाबा ने कहलवाया है कि मै जजमान का कार्य शीघ्र ही समाप्त करके कुछ देरी से आपकी सेवा में हाजिर हो जाऊंगा ।"

"कोई बात नही, पर तू हमसे इतनी दूर क्यों है ? रधिया ! तेरे जिम्मे भी एक काम डालना चाहता हूँ, कर देगी ?"– प्रश्न पूछने के साथ ठाकुर सा रधिया के सन्निकट आ गये । उनका काँपता हुआ हाथ रधिया के सिर पर था ।

"हुक्म दीजिये अन्नदाता !" – उसने अपने नैनों को ठाकुर सा की आँखों से टकरा दिया । ठाकुर सा की आँखों का पाप उसकी निश्छलता भरी अँखियों के समक्ष नहीं ठहर सका । कहीं और देखने के लिये इधर-उधर भटकने लगा ।

रधिया ने अपने पॉव के अंगूठे से धरती को कुरेदते हुए कहा –"आप बिना किसी हिचकिचाहट काज बता दीजिये, मै आपके हुक्म की सच्चे जी से ताबेदारी करूंगी ।"

"मुझे भरोसा है।" – कहकर सिर पर काँपता हुआ हाथ रधिया के गाल की ओर बढ़ा। रधिया ने झपट कर, दूर जाकर कहा –"मैं जाती हूँ माई-बाप।"

"हाँ-हाँ !"– ठाकुर सा की साँस तेज हो गई। वे कुछ घबराये से मालूम पड़े। चौपाल की खाट पर नरवस से होकर निढाल हो गये। विचारों में तूफान सा उठा जिसके कारण उनके ललाट पर श्वेतकण उभर आये। धीरे धीरे वे आश्वस्त हुए। सोचने लगे –"रधिया को कैसे पटाया जाय ?"– और वे खाट पर तुरन्त बैठते हुए बड़बड़ाये –"रधिया को लधिया पटायेगा..... और.....।" –तभी ठाकुर सा की आँखें उठीं तो सामने आते हुए रेवतदान को पाया।

रेवतदान ने हाथ जोड़कर, सिर झुका कर प्रणाम किया –"खम्मा अन्नदाता ! चाकर को आपने याद फरमाया है क्या ?"

"हाँ, जरा पाँव में दर्द है, मालिश करवाना है।"

"तेल मंगवाइये, आपका दर्द चुटकी बजाते ठीक कर दूंगा।"

"तेल मंगवाऊँ किससे?..... जाकर तू ही ले आ।"

रेवतदान तेल लाकर ठाकुर सा की मालिश करने लगा।

रात का गहरा सन्नाटा और अन्धेरा संसार पर आच्छादित हो चुका था। ठकुराइन के कमरे का प्रकाश अब भी पूर्ववत था और था जगत के चाँद का प्रकाश पूर्ववत। पवन का हल्के हल्के झोंके टीलों की शुष्कता लिये आ-जा रहे थे।

चारों ओर शून्यता थी, ऐसी शून्यता जैसे यह ग्राम निर्जन है।

उस निर्जनता को भंग करती थी –उन किसानों की कोई कोई आवाज जो दूर खेतों से प्रतिध्वनि के रूप में आती थी –"किसनवा हो ओ ओऽऽऽऽऽ।" या कुत्तों की भों भों अथवा गधों की चींपो चींपो।

रेवतदान अब भी ठाकुर सा के पाँव की मालिश कर रहा था। जब तक ठाकुर सा अपनी जबान से यह न कह दे कि बस करो तब तक रेवतदान

अपने हाथों को नहीं रोक सकता था, चाहे मालिश करते करते भोर ही क्यों न हो जाये ?

"रेवतदान !" – ठाकुर सा ने कहा ।

"अब तो तेरी लड़की मोट्यार हो गई होगी ?"

"आपकी दया है अन्नदाता !"

"कैसी दीखती है ?"

"आपकी दया से पार्वती सी ।"

"कद कैसा है ?"

"न अधिक ठिगना और न अधिक लम्बा ?"

"स्वभाव कैसा है ?"

"बिजली सा ठाकुर सा, सारे गाँव को सिर पर उठा रखा है। रोज रोज एक न एक शिकायत लेकर आ जाती है ।"

"इतनी नटखट है ?"

"हाँ ।"

"होना ही चाहिये, नाई की बेटी जो है ।"– इतना कहने के साथ ही ठाकुर सा के होठों पर तरस भरी स्मित थिरक गई। वे मन ही मन विचारने लगे –"नाई जाति की लुगाइयों की क्या इज्जत हो सकती है ? घर-घर घूमना-फिरना पड़ता है, न्यारे न्यारे लोगों से मिलना-जुलना पड़ता है।..... और यह तो प्रसिद्ध है कि छोटी जाति की औरतें साहूकारों और ठाकुरों के साथ गुप्त संबंध रखती है। हमें तो रधिया के अंग-अंग और नाक-नुस्खे से साफ मालूम पड़ता है कि हो न हो, इसमें हमारे जैसे ही किसी राजपूत का खून है वर्ना यह सुन्दरता पा जाना, कदापि संभव नहीं है ।" – सोचते-सोचते ठाकुर सा की भौहें टेढ़ी हो गईं। गंभीरता उनके चेहरे पर स्पष्ट रूप से लक्षित होने लगी। उसको छुट्टी देते हुए ठाकुर सा बोले –"अब तू जा ।"

"पर दिवाली के उत्सव पर रधिया को अवश्य लाना, हमारे यहाँ ढोलनियों के नाच-गाने होंगे।"

"आपकी आज्ञा सिर आँखों पर है।" – वह जाने लगा।

"रधिया से कहना कि वह ठकुराइन सा से मिल ले।"

"मिल लेगी अन्नदाता।" – सिर झुका कर रेवतदान ने प्रणाम किया और अपने घर की ओर चल पड़ा।

चौपाल में पूर्ववत शून्यता छा गई।

ठकुराइन सा के कमरे में अब भी प्रकाश जगमगा रहा था।

ठाकुर सा उस प्रकाश को देखने लगे – अतृप्त पिपासी की भाँति जिसकी वासना नवीनता के अभाव के कारण अतृप्ति में ही जलना चाहती है।

एकाएक ठकुराइन का मधुर कहकहा कमरे की खिड़की से होता हुआ ठाकुर सा के कर्ण कुहरों से टकरा गया। साधारण रोमांच से ठाकुर सा के अंग-प्रत्यंग सिहर उठे। संदेह मस्तिष्क में धुआँ बन कर उठा और उनके विचारों को, उन विचारों को जो ठकुराइन के सतीत्व के बारे में एक निश्चित दृढ़ता ले चुके थे, घुटाने लगा। कितने ही विभिन्न विचारों के घात-प्रतिघात जैसे रात के अकेलेपन में यह ठकुराइन सा का कहकहा ? क्या कोई पर पुरुष,.....नहीं, नहीं, क्षत्राणी ऐसा नहीं कर सकती, मर सकती है पर अपनी इज्जत नहीं बेच सकती,– उनके हृदय पर हथोड़े सी चोट कर रहे थे। हृदय के न चाहते हुए भी कदम ठकुराइन के कमरे की ओर बढ़ गये।

कमरे के किवाड़ बन्द थे।

ठाकुर सा ने द्वारा खटखटाया। भीतर से भय कम्पित स्वर सुनाई पड़ा –"कौन है ?"

"हम, ठकुराइन सा, हम !"

ठकुराइन सा के पाँवों के नीचे की जमीन खिसक गई। काटो तो

खन नहीं और गुलाम लधिया ? मौत की कल्पना करके वह ठकुराइन के पाँवों में पड़ गया ।

"किवाड़ खोलिये !"

"ठहरिये सा !"– ठकुराइन ने लधिये को उठाकर पलँग के नीचे छिपा दिया ।

"जल्दी से खोलो न ?"– ठाकुर सा के हृदय में उत्पन्न सन्देह उन्हें ही काटने लगा ।

"नही सा, मैं कपड़े बदल रही हूँ, ऐसी हालत में मैं आपके समक्ष....?" – ठकुराइन ने तुरंत लधिये की उपस्थिति के तमाम चिन्हों को छुपा दिया और द्वार की बढ़ी ।

द्वार खुला ।

ठाकुर सा की दृष्टि ठकुराइन की दृष्टि से टकराई । ठकुराइन ने झुक कर प्रणाम किया । ठाकुर सा ने एक लम्बी आह छोड़ी ।

"क्या बात है ठाकुर सा । आप परेशान दीखते हैं ?"– ठकुराइन ने उन्हें सज्जित निवारे के मोचे पर बैठने का संकेत किया । ठाकुर सा उस पर आसीन होते हुए बोले –"नहीं तो, यूं ही अपने खोये हुए दो सौ गाँवों की याद आ गई है ।"

"आप महाराज के पास जाकर उन्हें गाँव वापस बक्स देने के लिए कहते क्यो नहीं ?"– इतना कह करके ठकुराइन ने उनके हाथ में कसूम्बे का प्याला पकड़ा दिया –"मुझे पूरी आशा है कि वे आपकी बिनती को स्वीकार कर लेंगे ।"

"हम अब शीघ्र ही जायेगे ?"– कसूम्बे का घूंट पीते हुए ठाकुर सा बोले –"अभी अभी हमने आपके कमरे से आती हुई कहकहे की आवाज सुनी थी । क्या आप हँसी थीं ?"

"हाँ ठाकुर सा, आपकी बाँट जोहते-जोहते जब मेरा मन ऊबने लगा तो मैं मन ही मन फालतू बातों के बारे में सोचने लगी । मुझे याद आ

गई थी "फूलकी" की कहानी, जिसके हद से अधिक भोलेपन से नाराज होकर उसका पति परदेश चला गया। ऊँट की सवारी थी अतः ऊँट सवार हुआ उसका पति सोच रहा था–"उस जंजाल से तो पिंड छूटा।" तभी एक मीठे बेर की बोटी० रास्ते में आई। उसके बेर बहुत ही मीठे थे। उनमें से एक को तोड़ कर उसने ज्योंही चखा त्योंही उसे अपनी भोली भाली घरवाली फूलकी याद आ गई। वह बोल उठा –"कितना मजा रहता यदि फूलकी मेरे साथ रहती तो ?"

और फूलकी पीछे वाले ऊँट के छाटी+ में छिपी हुई थी उसमें से निकल कर बोली –"तू चिंता मत कर मेरा धणी, मैं तेरे मागे× ही हूँ।" –तब उसके पति ने उपने ऊँट को उसके ऊँट से सटाकर अपनी बहू को गले से लगा लिया, कितना प्रेम करता था वह अपनी बहू को ?"– ठकुराइन ने दीर्घ उश्वाँस भर कर अपने आप से यह प्रश्न किया जिसका उत्तर ठाकुर सा को देना पड़ा क्योंकि परोक्ष रूप से यह प्रश्न उनसे ही किया गया था।

"ठकुराइन सा ! मन तो हमारा भी चाहता है कि हम भी आपके नैनों की ज्योति बन करके रहें, पर न मालूम हम अपने विचारों पर कायम क्यों नहीं रह सकते ?"– कसूम्बे का प्याला खाली कर दिया।

"आप जैसा भी हमारे संग व्यवहार-बर्ताव करेंगे, हमें स्वीकार है। आप की आज्ञा पर चलना हमारा धर्म है ठाकुर सा।" – ठकुराइन ने पुनः प्याला भर दिया। ठाकुर सा अपनी ठकुराइन के इस अनुपम प्रेम पर विमोहित हो गये। और ठकुराइन उनके अंगों को अपने अंगों में समेटती जा रही थी।

जब ठाकुर सा नशे में अचेत हो गये तब ठकुराइन ने लधिये को मौचे■ के नीचे से निकाला। दरवाजा खोला। उसे अतृप्ति से देखकर

०छोटी बेर की झाड़ी, +ऊन का बना मजबूत बोरा, ×साथ ■खाट।

बाहर धक्का दे दिया। लधिया हाथ जोड़ कर केवल मुंह की हरकत से "खम्मा ठकुराइन सा, खम्मा ठकुराइन सा" कह रहा था।

९

दीवाली आई।

दीयों से सारा गाँव जगमगा उठा।

गगन चुम्बनी डेरे के गुम्बजों की प्रस्तर की प्राचीरों पर जलते दीये तिमिराच्छन्न रात्रि में तारों से प्रतीत हो रहे थे।

ठाकुर सा के डेरे के आगे एक ऊँची चौकी बनाई गई थी। उस चौकी पर ठाकुर सा बैठे थे। उनके आस-पास उनके अपने कर्मचारी और गोले बैठे थे। उन सबके समक्ष खुला रंगमंच था और रंगमंच के तीनों ओर गाँववाले खड़े-बैठे थे।

ढोलनियों के नृत्य-गीत के बाद 'खीमजी और आभलदे' नामक प्रेम कथा पर आधारित नौटंकी प्रारम्भ हुई। आभलदे विरह में गा रही थी–

"प्रेमी ढूंढत म्हें फिरूँ, प्रेमी मिले न कोय
प्रेमीड़े रे दरस सूं, सब जग प्रेमी होय"

प्रेम और विरह के सुन्दर, शील और अश्लील, दोहों तथा गीतों से भरपूर नौटंकी चल रही थी। नौटंकी का मसखरा याने विदूषक का अभिनय बहुत ही अनोखा था। उसकी वेषभूषा अजीब थी। ऊँची ऊँची धोती और पाँव को छूने वाला चोगा। आँखों के चारों ओर सफेद मिट्टी के बड़े बड़े चकौरे बने हुए थे। तवे के कालमिस० से बनी दाड़ी। ऊँट सी चाल, रईस सा ठाट।

---

० कालिख।

ठीक ठाकुर सा के सामने बैठी रधिया और मैना उसे देखकर जोर से हँस पड़ीं। इन दोनों की हँसी ने ठाकुर सा को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। ठाकुर सा ने उन्हें घूर कर देखा और मूंछों पर ताव देने लगे।

ठाकुर सा ने लधिये को संकेत किया। लधिये ने उसके मुंह के समीप अपने कान कर दिये। ठाकुर सा ने अत्यन्त हौले से कहा –"आज अच्छा अवसर है, नौटंकी समाप्त होने पर रधिया को कहना – तुम्हें ठकुराइन सा बुला रहीं हैं, और अपने पिछले तहखाने में ले आना।"

"जतन करूँगा ठाकुर सा।"

इसके पश्चात ठाकुर सा की आँखें दो स्थानों पर केन्द्रीभूत होने लगी। कभी नौटंकी पर और कभी रधिया पर। रधिया की आँखें भी कभी कभी ठाकुर के चेहरे पर जा टिकती थीं और कभी कभी दोनों की आँखें टकरा भी जाती थीं। मैना की जाँघ पर रधिया ने हल्की सी चुटकी भरी –"यह अपने ठाकुर सा है न, भले नहीं दीखते।"

"भले है ही कहाँ, पूरे छंटे० हुए रईस है। बड़ी नियत खराब है।" – घृणा से मुंह बिचका दिया मैना ने।

"तभी मुझे घूर घूर कर देख रहे हैं, जैसे मुझे खाना चाहते हैं।"

"हौले बोल, कोई सुन लेगा तो, अरी वह तुम्हें खाने आयेगा तो मैं इसकी मूंछें उखाड़ डालूंगी, बुढ्ढा खूसट होने चला है लेकिन नियत नहीं बदली।"– आंखें तरेर कर मैना ने कहा।

"मैना !"– रधिया मैना से चार नजर करती हुई बोली –"अब मैं जाती हूँ ?"

"कहाँ ?"

"अपने घर !"

"क्यों ?"

---

० चुने।

"नीद आ रही है ।"

"ये तो तेरी आँखे ही बता रही है !"

"सच बताऊँ वहाँ ।"– इस शब्द में एक रहस्य भरा संकेत था ।

"कहाँ ?"

तभी भीड़ का अट्टहास जोर से गूज पड़ा । उन दोनों ने देखा कि विदूषक को उसकी बहू पीट रही है और विदूषक बन्दर की भाँति उछल रहा है । वे दोनों भी हँस पड़ी । मैना ने दुवारा पूछा –"बता न निखट्टू, कहाँ जाना चाहती है ?"

"अरी वहीं न ।" – कटाक्ष किया रधिया ने ।

"अब तू मेरे इस हाथ का गर्मागर्म मालपूड़ा० खायेगी, नही तो साफ साफ बता दे कि कहाँ जायेगी ?"

"मोहन के पास !"

"क्यों ?.....देख, कितनी रात हो गई है ?"

"उससे मिलने की सौगन्ध खाई है । वह मेरी बाट जोहता होगा, मुझे जाना ही चाहिये ।"

"पर इस घोर अंधियारे में तुम्हें डर नहीं लगेगा ?"

"डर तो मुझे एक तेरा लगता है, बस तू किरपा× और अपनी जबान के ताला लगाये रखना, बाकी मं सब संभालूगी ।"

"मै किसी को क्यों कहूँगी, माल तेरा है, तू जिसे चाहे लूटा ।" – मैना ने रधिया की चुटकी भरी । रधिया ने धीमे से उसके गाल पर चप्पत जमाते हुए कहा –"चुप !"

रधिया उठी तो ठाकुर सा की उस पर नजर जा टिकी । उन्होंने तुरन्त लधिये को पीछा करने संकेत किया । लधिया रधिया के पीछे हो गया ।

०मालपुआ, ×कृपा ।

जाने-पहचाने रास्ते पर रधिया के चरण पूर्ण सजगता से बढ़ रहे थे। अन्धेरा उसके लिये तनिक अवरोद्ध का कारण नहीं बन सका पर लधिया कभी कभी ठोकर खा ही लेता था।

गोचर भूमि की सीमा पर मोहन विकलता से खड़ा खड़ा प्रतीक्षा कर रहा था। रधिया को देखकर मोहन का रोम रोम पुलकित हो उठा –"रधिया !"

"मोहन !"– दोनों एक दूसरे के समक्ष खड़े हो गये। मोहन ने रधिया के कन्धों पर अपने हाथ रखते हुए कहा –"रधिया तू टूटे बेर की भाँति टूट कर बीच में कहाँ अटक जाती है कि बाट जोहते मेरी तो आँखें ही पथरा जाती है।"

"मोहन ! तू ठहरा मिनख और मैं ठहरी लुगाई। तेरे में और मेर में बहुत फर्क है।"

"मोहन !"– लधिया मन ही मन बोला और एक झाड़ी में छिप गया। और रधिया बोलती ही जा रही थी –"मिनख का पानी इतना पतला नही होता कि वह पराई लुगाई के साथ रंगे हाथों पकड़ा जाय तो उतर जाये पर लुगाई तो काठ की हांडी है,जो एक बार ही चढ़ती है।"

"तू बहुत ही सयानी हो गई है।" – मोहन ने रधिया का हाथ पकड़ा जिसे अन्धेरे के कारण लधिया न देख सका और मोहन बोला –"चल, नारायण बाबा के पास।"

"नारायण बाबा !"– लधिया का शरीर पानी पानी हो गया। उसके पाँव स्वतः ही डेरे की ओर उठ गये –"ये लोग राक्षस के पास जा रहे हैं। डर ही नहीं लगता इस बला को। बड़ी कलेजेवाली छोरी है।" –लधिये के कदम और तेज हो गये।

नारायण सिंह की झौपड़ी के आगे दो दीये जल रहे थे। मोहन उनके धुंधले आलोक में रधिया का सलोना मुख देख रहा था – कितनी जिन्दगी नाच रही थी उसके मुख पर !

"बाबा !" – मोहन पुकारा ।

".....।"

"बाबा !" – रधिया ने पुकारा ।

".....।"

"कहीं चले गये होंगे ।" – मोहन ने रधिया की ओर उन्मुख होकर कहा –"रधिया ! अब मैं तुम्हें अपनी बहू बनाना चाहता हूँ ।"

"फिर जाकर बाबा से बात क्यों नहीं कर लेता ।"

"न, रधिया न ।" – मोहन की आँखों में भय नाच उठा ।

"क्यों रे ?"

"मुझे वहाँ जाते डर लगता है ।"

"किससे ?".....

"तेरे ठाकुर से.....जानती नहीं, हमारे ठाकुर मा और तेरे ठाकुर में खानदानी बैर है । कहीं तेरे ठाकुर को पता लग जायेगा कि मैं उनके गाँव की छोरी से दिल लगा बैठा हूँ तो मेरे प्राण नहीं बचेंगे ?"– मोहन की पलकें स्थिर होकर रधिया के भयभीत मुख पर जम गईं । अधर कुछ कहते-कहते रुक गये ।

रधिया अपने दोनों हाथों से उसका चेहरा पकड़ कर तथा अपना मुंह उसके मुंह के सन्निकट लाकर बोली –"पर तू थोड़ा बुद्धि से काम ले तो तेरा बाल भी बाँका नहीं हो सकता ।.....तू लुक-छिप कर बाबा से क्यों नहीं मिल आता ?"

"जतन करूँगा पर मुझे डर लगता है ।"

"तू तो गीदड़ है, पक्का गीदड़ ।"– रधिया ने मटक कर कहा ।

"और तू तो बड़ी शेरनी है !"– मोहन ने झपट कर चुम्बन ले लिया । पुरुष के पुलकित स्पर्श से अज्ञात यौवना निर्वाक बैठी रही ।

दीयों का स्नेह जलते-जलते समाप्त होने लग गया था । मोहन ने लपक कर उनमें तेल डाला । रधिया भी सावधान हुई । मोहन ने

आकर पुनः अपना दुखड़ा सुनाया –"रधिया ! आजकल मुझे रात में नींद नहीं आती ?"

"तो दिन में सो जाया कर ।"

"पर नींद दिन में भी नहीं आती ।"

"तो रात को.....।" – कहती-कहती रधिया बात को बदलती हुई बोली –"न तुम्हें दिन में नींद आती है और न रात में, फिर मोहन तू एक काम कर कि जब आधा सूरज बाहर हो और आधा सूरज भीतर, तब सोया कर ।" – वह गंभीरता से बोली ।

"तब मजा नहीं आयेगा ।"

"तब मजा नहीं आयेगा ।"– स्वर में रोष और जोष के भाव दोनों थे । –"चल, मुंहफट कहीं का ।"

"किसको डाँट रही हो रधिया ?"– नारायण सिंह ने पूछा–"ओह ! मोहन को ।

"हाँ बाबा, यह मुझे हरदम छेड़ता रहता है ।"

"राधा और मोहन का छेड़ना-छाड़ना कभी बन्द भी हुआ था ?"

इस पर मोहन ने गर्व से उसकी ओर देखा । रधिया नखरे से आँखें घूमा कर नारायण सिंह से पूछने लगी –"बाबा तू कहाँ चला गया था ?"

"मैं,....यूं ही इधर-उधर गया था ।"

"बाबा, तू हमें इतना क्यों चाहता है ?"

"इस बनवास के जीवन में किसे तो चाहना ही चाहिए। जानती है, मोहन ने मुझे पिंजड़े से निकाला था पर एक शर्त्त पर कि मैं अपने गाँव वालों पर हाथ न उठाऊँ वर्ना उस जसवन्त सिंह.....।" – अच्छा अब तू जा, रात बहुत हो गई है । – नारायण सिंह की आँखें लाल होती होती रुक गईं ।

"अच्छा बाबा ।.....मोहन मैं जाती हूँ ।" – रधिया उठी ।

"ठहर, मैं तुम्हें पहुँचा देता हूँ ।"

सीमा पर पहुँचते ही मोहन ने पूछा –"अब तू कब आयेगी ?"

"शायद कल से मुझे ठकुराइन सा की सेवा में जाना पड़े पर तू चिंता न कर, मैं गोरी के हाथ सन्देशा भेजवा दूंगी।" – और रधिया अन्धेरे में विलीन हो गई।

थोड़ी देर के बाद भोर का तारा गगन में चमकने लगा था।

१०

भोर होते ही लधिया ठाकुर सा की सेवा में हाजिर हुआ।

ठाकुर सा ने पूछा –"रात को रधिया अपने घर गई थी क्या ?"

"नहीं अन्नदाता।"

"तो.....।"

"नारायण सिंह जी के पास, वहाँ कोई मोहन नाम का छोरा है। उससे वह अपनी सिटपिट लड़ा रही थी शायद उसे सीने से भी लगाया था।"

"हवा का रुख उल्टा चल रहा है लधिया, इसे हमें रोकना ही पड़ेगा वर्ना,.....।"

लधिये ने उत्सुकता से ठाकुर सा की ओर देखकर कहा –"एक बात बताऊँ ?"

"....."

"यह रधिया है न, यह रेवतदान की सगी बेटी नहीं है।" हिचकते हुए बोला लधिया; क्योंकि उसे भय था कि यदि उसके कथन में जरा भी झूठ हुई तो ठाकुर सा उसकी हँडी-पँसली एक कर देंगे।"

"फिर यह बेटी किसकी है ?" –ठाकुर सा की जिज्ञासा बढ़ी।

"यह तो वह बताता बताता रह गया। हाँ, एक दिन बातों ही बातों में उसने इतना जरूर कहा था कि वास्तव में यह बेटी मेरी नहीं है।"

"हमारा भी यही अन्दाज है, उसके रूप-रंग, चाल-ढाल से तो यही पता लगता है कि खून किसी और का ही है। और एक यह बात भी है कि इन छोटी जात वाले की कोई खास इज्जत नहीं होती।"

"आपका कहना सोलह आने ठीक है।" –लधिया ने उनकी बात की पुष्टि की।

"तो जरा अणतिये से कहना कि वह रेवतदान को बुला लावे।"

"हुक्म अन्नदाता !" –लधिया चला गया।

अणतिया रेवतदान के घर की ओर चला।

रधिया पेट के बल सोई हुई थी। रेवतदान उसे उठाने की चेष्टा कर रहा था और रधिया ऊँऽऽऽऽ करके पुनः सो जाती थी। अन्त में रेवतदान ने उस पर पानी के छींटे गिरा दिये। रधिया हड़बड़ा कर झल्ला पड़ी –"मत सोने दे, तू मुझे घड़ी भर भी मत सोने दे। यदि मैं तुम्हें नहीं सुहाती हूँ तो तू मेरा गला ही दबा दे।"

"खाम खा बिगड़ रही है। देख तो सही, सूरज सिर पर कितना चढ़ आया है ? जानती नहीं, देरी से उठने पर दरिद्रता आती है ?"

"आने दे, कौन से अलग़ दादा ने झाँझर के० उठकर अपने सब भंडार भर लिये। फाका तो उस घर में भी पड़ता ही रहता है।"

उसके सिर पर हाथ फेरता हुआ रेवतदान धैर्य से बोला–"यह बात नहीं है, पर छोरियाँ काम करती ही चोखी लगती हैं, बिना काम किये, हाँड हराम के नहीं हो जायेंगे ?"

"ऐसे घर में पैदा ही नहीं किया है भगवान ने कि दो घड़ी सुख से पाँव पसार कर सो जाऊँ।"

०सवेरे के बहुत पहले।

"रधिया !"– हृदय की सुखद कल्पना की अनुभूति के कारण उसके होठों पर मुस्कान थिरक उठी। रधिया पर वह अपनी दृष्टि जमाता हुआ बोला –"रधिया ! अब तू सयानी हो गई है। कल तेरा व्याह होगा,परसों तू ससुराल जायेगी,वहाँ यदि थोड़ी भी मोड़ी० उठेगी, तो जानती हो, तेरी सास दस बातें सुना देगी। थोड़ा भी काम खराब किया तो जेठानियाँ ताने देने लग जायेंगी कि देवरजी बहू भी लाये पर गुड़िया, इधर-उधर फुदक-फुदक कर नाचना जानती है, काम-काज से तो इसे बैर है, और तेरे धणी से क्या मजाकें करेंगी ? कहेंगी –रंगीले देवर जी, अपनी बहू को मन्दिर में बिठा कर सेवा कीजिये, कुँकू+ के छींटे डालिये।" – सुनते-सुनते रधिया के अरुण-तरुण कपोल लज्जा से आरक्त हो गये। पलकें झुक गईं। पिता को लाख मना करने की चेष्टा करती रही पर रेवतदान मधुर कल्पना के सुखद प्रवाह में बहता ही गया–"हमारी बेटियों की शोभा ही काम है।"

"यदि यह बात है तो मैं व्याह करूँगी ही नहीं।"– रधिया अपनी ओढ़नी को दाँतों के बीच दबाकर सुर्गा के घर भागी ताकि हँसी फुटे नहीं। सुर्गा रधिया की अपनी पक्की भायली थी जो अभी अभी ससुराल से लौटी थी। उसे एकान्त में घसीट कर वह पूछ बैठी –"क्यों सुर्गा, ससुराल में क्या क्या होता है ?"

"होता क्या है ? जो यहाँ होता है वही वहाँ होता है। फर्क बस इतना है कि यहाँ मुह उघाड़ कर घूमती है, वहाँ दो हाथ का घूंघट निकालना पड़ता है।"

"तेरे धणी ने पहले-पहले क्या किया ?"– रधिया की आँखें सुर्गा से टकरा गईं।

".....।" – सुर्गा लज्जा से लाल हो उठी।

०देर से, +कुंकम।

"अरी बोलती क्यों नहीं, नहीं तो हरदम तेरी जबान कतरनी० की तरह चक्-चक् चलती रहती है ।"

"उन्होंने....हट निगोड़ी, जब ब्याह कर लेगी तो सब जान जायेगी कि कैसे और क्या होता है ?"

"मैं क्या जानूंगी मेरा तो मोह.....।" – रधिया कहनी कहती बिलकुल चुप हो गयी। अपने दायें हाथ से जीभ को पकड़ कर उसे मन ही मन डाँटा कि क्या निकल जाता मेरे मुख से अभी।

"अच्छा मैं चली।" – रधिया अपने घर आ गई।

रेवतदान कपड़े पहनकर अपनी हजामत की पेटी उठा रहा था। रधिया को देखकर उसे समझाते हुए वह बोल ही रहा था कि अणतिये ने प्रवेश करके कहा–"रेवतदान ! तुम्हें ठाकुर सा ने इसी घड़ी बुलाया है।"–रेवतदान ने कहा –"आ रहा हूँ।"

अणतिया वहीं पर खड़ा हो गया। रधिया विहँस कर बोली –"मैं रोटी बनाकर आज ठकुराइन सा के यहाँ नहीं जाऊँगी, तू खबर कर देना।"

"क्यों ?"

"आज मुझे गोचर भूमि जाना है,मेरे पाँव की जूती वहाँ रह गई है।"

"कैसे रह गई है ?"

"मैं क्या जानूं, मैंने तो उस मरी रॉड को पल्ले बाँधा था।"

"चली जाना पर जाकर भगीरथ मत बन जाना, जल्दी लौटने की चेष्टा करना।" –रेवतदान डेरे की ओर चला।

बैठकखाने में ठाकुर सा अपने कारिन्दे के साथ बैठे लगान का हिसाब-किताब देख रहे थे। इस समय उनकी मूंछें कुछ नीचे झुकी हुई थी,शायद कंघी करके उन पर हाथ नहीं फेरा गया था। मूंछों पर हाथ फेरते हुए

० कैंची।

ठाकुर सा बोले –"जो लगान देने में आनाकानी करे, उसका दिमाग ठीक कर दो, मार-मार के ।

"खम्मा अन्नदाता !"– रेवतदान ने प्रणाम किया । कारिंदा उठकर चला गया ।

"आओ, रेवतदान आओ । कहो, क्या हाल-चाल है ?"– उनके स्वर में गहरी आत्मीयता थी ।

"सब आपकी दया है ? जरा मैं रावले० में जाकर आता हूँ, रधिया आज नहीं आयेगी ।"

"क्यों नहीं आयेगी ?"

"वह गोचर भूमि में...।"

"रेवतदान ! मैं कई रोज से देख रहा हूँ कि हमारे गाँव की खबरें बाहर कैसे पहुँचती हैं ? आज हमें मालूम हुआ कि भेदी कौन है ?" ठाकुर सा के नेत्र विस्फारित हो गये । उनमें आग धधक उठी ।

"नहीं अन्नदाता, वह ऐसा नहीं कर सकती, वह तो बिलकुल भोली-भाली है ।" – रेवतदान ने विनय से कहा ।

"हम सब जानते हैं,..... रेवतदान !"– भौहों को टेढ़ी करके पूछा ठाकुर सा ने –"यह रधिया किसकी बेटी है ?"

"आपकी अन्नदाता ।"–हठात् कहा रेवतदान ने । जैसे तपती हुई श्लाखें किसी के तन से छू जाती है और वह चिहुँक उठता है, उसी प्रकार ठाकुर सा चीख पड़े –"बको मत, तू हमारे गाँव में रहकर हमें ही पट्टी पढ़ा रहा है ? पर हम राजपूत हैं रेवतदान,पाप हम से छिप नहीं सकता । तू लाख छिपा, पर हम जानते हैं कि यह बेटी किसकी है ?"

रेवतदान विचलित सा हो उठा । मन में शंका उठी –"किसने बता दिया इस भेद को ?" – और हाथ जोड़ कर बोला –"माई-बाप आपको किसी ने बहका दिया है ।"

---

० अन्तःपुर ।

"बहक तू सकता है, दूसरा नहीं, कल दीवाली की रात की बात है, तेरी यह छिनाल छोकरी आधी रात को गोचर भूमि में गई थी, कौन बैठा है वहाँ उसका ? ऐसी गिरी हुई बेटियाँ हमारे गाँव की नहीं होतीं, सच-सच बता दे वर्ना बैलगाड़ी के चक्के के नीचे तेरा सिर दे दूंगा।"
– ठाकुर सा ने मूंछों पर ताव दिया।

"अन्नदाता ! यह मेरे.....।"

"हाँ-हाँ, डर नहीं, हम तुम्हें खा थोड़े ही जायेंगे।"

थोड़ी देर के लिये रेवतदान विमूढ़-सा ठाकुर सा को देखता रहा। जबान को जैसे लकवा मार गया था, एक शब्द भी बोला नहीं जाता था।

"बोल तो, क्या गूंगे की भाँति आँखें फाड़ फाड़ कर देख रहा है ?"

"यह मेरे भायले की बेटी है ?"

"कौन से भायले की ? क्या जात थी उसकी ?"

"पास वाले गाँव में रहता था, जात थी....!"–एक पल के लिये वह रुका। सोचने लगा –"कौन सी जात बताऊँ ?"– फिर वह न जाने क्या सोच कर बोला–"छत्री०।"

"छत्री ! वर्णशंकर कहीं के, तू ने एक छत्री कन्या का धर्म-भ्रष्ट कर दिया। अब तेरे प्राणों की खैर नहीं। राजपूत तुम्हें कच्चा चबा जायेंगे।"

"ठाकुर सा.....!"– भय से कम्पित नेत्रों से ठाकुर सा की ओर देख कर रेवतदान ने उनके पाँव पकड़ लिये।

"अक्ल के दुश्मन, किसी भी राजपूत को यह पता चल जायेगा कि तू ने हमारी बेटी की जात खराब कर दी है तो तू क्या जीता-जागता बच जायेगा ?"

"तो फिर....?"

---

० क्षत्री।

"जैसा हम कहते हैं, वैसा ही कर, किसी को पता न पड़ने दे कि यह छत्री की बेटी है; क्योंकि तू हमारा पुराना चाकर है, तेरे पर हमें दया आती है।"

"हाँ माई-बाप ! हमारा जीवन तो आपके चरणों में है। उनकी पद-रज को अपने सिर पर लगाया।"

तभी मेघले ने आकर कहा –"अन्नदाता ने घणी घणी खम्मा ! ठकुराइन सा आपको याद फरमा रही हैं।"

"उन्हें जाकर कह दे कि पट्टी बाँध कर सो जायं, अभी हमें फुर्सत नहीं है।"– मेघला अपना-सा मुंह लेकर चल पड़ा।

"हम तो तेरी बहुत ही चिंता करते हैं। सुन, यह ले कुछ रुपये और रधिया को डेरे पर काम करने के लिए भेज देना,कल से गोचरभूमि उसका आना-जाना बन्द।"

"जैसी आपकी मर्जी।" – रेवतदान ने चंद सिक्कों को उठा कर तृष्णा भरी आँखों से देखा। सोचने लगा –"कितने दयालू हैं हमारे अन्नदाता ! मेरे अपराध को क्षमा करके उल्टी मेरी सहायता कर रहे हैं। कितने कृपालु हैं मेरे ठाकुर सा।"

मनुष्य की प्रवृत्ति पर पूंजी ने सदैव विजय पाई है। बड़े बड़े बुद्धिजीवी पूंजी के प्रकाश-पुंज में पथ विस्मृत होकर बिक गये हैं, सामन्तों के आतँकों ने गरीबों की जिन्दगी को खिलौना बना डाला है। उनकी इच्छा के सिवाय उनका अपना कोई व्यक्तित्व नहीं है। कोई अभिलाषा नहीं है।

फिर रेवतदान की क्या बिसात थी ? चुपचाप उन सिक्कों को देखता हुआ जाने के लिये बगलें झाँकने लगा।

"रात को एक बार फिर मिल लेना। अब तू जा।" – ठाकुर सा की आज्ञा पाकर रेवतदान अपने घर की ओर चला। भय और ठाकुर सा के व्यवहार से उसकी दशा विचित्र हो रही थी। पर उसके चेहरे पर

गहरी उदासी छायी हुई थी। कदम जरूर घर की ओर उठ रहे थे पर मन 'रधिया' पर जमा हुआ था। उस रधिया पर जिसको उसने सुख-दुख सहकर पाला–पोसा था, केवल इसलिये कि उसके सन्तान नहीं होती थी और उसकी बहू 'गवरा' हमेशा बच्चे के लिये उसे उलाहना देती थी और आज वही उसके जीवन पर विकट समस्या बन कर छा गई है। उसे उस भयानक छोर पर लाकर खड़ा कर दिया है, जिसके एक ओर कुँआ और दूसरी खाई है।

उसे फिर संदेह हुआ कि कहीं ठाकुर सा स्वयं कसूम्बे के नशे में यह न कह दें कि रेवतदान एक छत्री की कन्या का धर्म भ्रष्ट कर दिया है। वह काँप उठा। मौत उसकी आँखों के सामने नाचने लगी।

और भाँति भाँति संकल्पों-विकल्पों में डूबे रेवतदान के ललाट पर श्वेदकण उभर आये।

११

मोहन ने रधिया को अपने सीने से सटाते हुए पूछा –"दीवाली की रात तेरे बाबा ने तेरे से कुछ कहा तो नहीं ?"

रधिया तपाक से बोली –"तू रहा बुद्धू का बुद्धू ही। अरे मैं तो नौटंकी के खत्म होने के पहले ही घर पहुँच गई थी। यह तो मेरी बैरन गोरी ने रंभा दिया बर्ना बाबा को तो यह भी पता नहीं चलता कि मैं कब आकर सोई ?"

उसकी मदभरी आँखों में अहम था। प्यार था जो तरलता का रूप धारण करके उसके नयन-कोरों को तरल कर रहा था।

"रधिया !"– मोहन ने उससे मजाक किया –"तू ऊपर से जितनी भोली दीखती है, भीतर से उतनी ही गजब की गोली है ।"

"तभी तो तेरे जैसे छैल-छबीले के पीछे भागती फिरती हूँ ।"– रधिया का उत्तर बहुत वजनी था । मोहन झेंप गया । अपनी झेंप को छिपाने के लिये वह रधिया के बालों में अपनी अंगुलियाँ उलझाने लगा । अंगुलियाँ उलझाता-उलझाता वह धीरे से बोला –"रधिया मैं क्या करूँ, यह चौबारा० ही भगवान ने ऐसा बना दिया है कि जो देखती है, वही पीछे भागने लगती है ।"

जैसे किसी की मूर्खता पर किसी को तरस आता है, ठीक उसी भावों को चेहरे पर लाकर तथा अपनी हथेली को दीये के आकार में बना कर, उसे मोहन के मुंह की ओर आगे बढ़ाकर रधिया उपहास से बोली –"..कभी काच× में अपना मुंह भी देखा है । अरे, जरा हथेली फैला तो अपने चौबारे के नीचे, कहीं रूप टपक न जाये ?"

मोहन रधिया के भाव को ताड़ गया । अह्म से बोला –"हँसी उड़ा रही है तू, अरी बावली मोहन के पीछे तो हमेशा ही गोपियाँ भागती रहती थीं । वह मोहन द्वापर का था, तो उसके साथ पचास भागती थीं और मैं कलियुग का हूँ, इसलिये एक भागती है ।"

"वह कौन ?"

" तू है न, पूंगल देश की पद्मिनी ।"

"सुन मोहन,तेरे पीछे भागेगी मेरी जूती, तू मुझे समझता क्या है ?"

"बस झगड़ा करने लगी ।"

"और तू करेगा ही क्या, न जाकर मेरे बाबा से व्याह की बात-चीत करता है और न.....।" – रधिया हँस पड़ी ।

"रधिया, देख काली-पीली आँधी आ रही है ।"–मोहन ने बीच में ही कहा ।"

---

० मुख, ×दर्पण ।

"आँधी ! – दोनों संभले । भाग कर दोनों ने अपने पशुओं को एकत्रित किया । रधिया गोरी को भी पकड़ लायी थी तब वे दोनों एक बोटी के नीचे आकर बैठ गये ।

आँधी बढ़ी । उसका प्रकोप भयावह व अन्धकार-मय हुआ तो सब पशु एक दूसरे से सटकर खड़े हो गये । पशुओं की आँखें बन्द थीं, उनका हिलना-डुलना बन्द था; जैसे वे स्थिर होकर इस आँधी का सामना कर रहे हैं । उन सब पशुओं की ओट में मोहन और रधिया बैठे थे । दोनों के सिर और भौहें के बाल धूल-धूसरित हो गये थे । अगले दाँतों पर धूल की तह जम गयी याने उनकी मुद्रायें विचित्र हो गयी थीं । वे दोनों एक दूसरे से सट कर बैठे हुए थे ।

आस पास के जितने भी वृक्ष थे, वे आँधी से पराजित होकर नत हो गये । रेत के टीले कागज के घरों की भाँति इधर से उधर उड़ने लगे । रधिया और मोहन के समक्ष जो टीला था, वहाँ देखते देखते समतल भूमि बनती जा रही थी ।

कितनी भयानक आँधी थी ? क्षण-क्षण में उसका प्रचंड रूप, प्रचंडतर हो रहा था । रधिया क्रमशः मोहन के अंगों में सिमटती जा रही थी ।

आँधी थोड़ी और बढ़ी । उसके साथ अंधेरा और अंधेरे के साथ रधिया निर्द्वन्द्व परिस्थिति के आदेश पर, वस्तु स्थिति से अज्ञात मोहन के अंगों में सिमटती गई और अन्त में सिमटने की चरम सीमा आ गई ।

आँधी रुकी ।

दोनों चौंक कर एक दूसरे से विलग हुए । कितनी करुणाभरी विवशता थी रधिया के चेहरे पर, और मोहन ! वह तो आत्मग्लानि के मारे उस रेत में धँसा जा रहा था । दोनों निर्वाक अपने अपने कपड़ों की धूल झाड़ने लगे । तत्क्षण पशुओं ने रंभाना और मंऽऽऽ मंऽऽऽऽ करना प्रारम्भ किया । गौरी आकर उन दोनों के बीच खड़ी हो गयी । मोहन को

बोलने का बहाना मिल गया –"रधिया ! यह गोरी कितनी चालाक है कि खड़ी भी हुई तो हम दोनों के बीच में ?"

"अच्छा ही किया"–रधिया उसकी ओर बिना देखे धीमे स्वर में बोली –"यह भी तो जानती है, कि तू अब मुझे जल्दी ही व्याह करके अपने घर ले जायेगा ,तब इसकी देख रेख कौन करेगा, इसकी इसे भी तो चिंता लगी हुई है, क्यों गौरी ? मैं ठीक कहती हूँ न ?"

गौरी ने गर्दन हिला दी। मोहन और रधिया दोनों मुस्करा पड़े। रधिया ने मोहन के समीप आकर कहा – "अब व्याह की बात जल्दी से कर ले मोहन, अब मेरा भी मन तेरे बिना धीरज नहीं धरता।"

मोहन ने उत्तर देने के लिये मुंह खोला ही था कि नारायण सिंह की आवाज सुनाई पड़ी –"आँधी से कोई नुक्सान तो नहीं हुआ ?"

"नहीं।" – मोहन ने उत्तर दिया। नारायण सिंह उनके दोनों के समीप आ गया था। उन दोनों पर दृष्टिपात करता हुआ बोला –"मुझे तो भय हो रहा था कि आज जरूर नुक्सान हुआ होगा, खैर ! मैं चला !" नारायण सिंह चला गया।

"अच्छा रधिया, अब मैं भी चला !"– मोहन ने भी कहा।

"तो मैं यहाँ पर थोड़े ही खड़ी रहूँगी, मुझे भी तो चलना है।"

"फिर तू उधर को जा और मैं इधर को।"– मोहन रधिया को हल्का धक्का दिया। रधिया ने उसे गुस्से से देखा।

तब दोनों अपने अपने घर की ओर रवाने हुए।

१२

अनुभव किया है कि प्रतीक्षा में समय की गति इतनी धीमी हो जाती है जितनी कछुवे की चाल; कछुवा भी वह जो वृद्ध हो चुका है। इस

प्रतीक्षा में मनुष्य आकुलता-व्याकुलता से कभी उठता है, तो कभी बैठता है, कभी चहलकदमी करता है तो कभी प्रस्तर की तरह जड़वत हो जाता है। किसी की भी पगध्वनि सुनकर वह यही सोचता है कि वह आ गया है, जिसकी वह प्रतिक्षा कर रहा है।

पल पहर बन जाते हैं। चाँद के ढलने में उसे शंका प्रतीत होती है, सप्तऋषि मंडल की परिक्रमा में उसे संदेह का आभास होता है और उस व्यक्ति पर तीव्र आक्रोश आता है, जिसकी वह प्रतीक्षा कर रहा है।

रधिया जबसे मोहनके पास से लौटी थी तब से उसके बाबा का पता ही नहीं था। बाबा की प्रतीक्षा में उपर्युक्त समस्त अनुभूतियाँ उसे हो रही थीं। बाबा पर लाल आँखें करके वह झुंझला रही थी –"जहाँ जाता है, लम्बा ही हो जाता है, पीछे क्या हो रहा है, उसकी बला से।"

गोरी ने रंभाया तो रधिया तुरन्त समझ गई कि बाबा आ गया है सो वह जितना मुंह फूला सकती है, उतना फूला कर 'रूठी रानी' की भांति रूठ, दीवार की ओर मुंह घूमा कर बैठ गई।

बाबा आते ही बरस पड़े –"कहाँ मर गई थी इतनी देर से ?"

रधिया ने बाबा की ओर देखा तो उसकी त्यौरियाँ बदली हुई थीं। उसकी बदली हुई त्योरियाँ रधिया को सह्य नहीं हुईं, इसलिए वह भी उसी गर्म स्वर में बोली –"कुएँ में डूब मरने !" –और फिर पूर्ववत मुद्रा में होती हुई बड़बड़ाने लगी –"आता है तो जैसे किसी को खा जायेगा, खुद आता है जमीन का स्वाद लेता लेता और बिगड़ता है दूसरों पर।"

"मैं तो तुम्हें ही खोजने गया था ?"

"क्यों ?"

"तेरे आजकल जो पंख निकल आये हैं ?"

"बाबा !"– रधिया का सम्मान चीख उठा–"मेरे कैसे पंख निकल आये हैं..... ....?"– वह पूरी बोलने भी नहीं पाई थी कि बाबा शीघ्रता से बोला –"तेरे क्यों पंख निकलने लगे, पंख तो मेरे निकले हैं; क्योंकि तू

तो कौवे से सयानी और बच्चे से भी ना समझ ठहरी।..... मैं पूछता हूँ कि दीवाली की रात तू कहाँ मरी थी ?"

सुनते ही रधिया का चेहरा सफेद हो गया। उसने बाबा की ओर देखा तो उनकी आँखों में घृणा को चमकते पाया। हकलाती हुई वह बोलने के लिये तैयार हुई कि रेवतदान पुनः गंभीर होकर बोला—"अपने घर की इज्जत बेचने, अपने खानदान पर चार चाँद लगाने, क्यों ?"

".....।"

"अब बोलती क्यों नहीं, क्या तेरी जबान के टाँके लग गये है, निखट्टू कही की, वहाँ तेरा कौन बैठा था ?"

".....।" – रधिया के काँपते होठ फड़के और फड़क कर बिना शब्द निकाले ही शांत हो गये जैसे हमारे समाज का यह प्रश्न कितना भयानक और चिरन्तन है कि जब कभी कोई नारी किसी से प्रेम करने के लिये लुक-छिप कर गई और उससे यह प्रश्न किया गया तो वह मौन ही रही। कदाचित् उसमें उत्तर देने की क्षमता नही थी या वह विवश थी—इसका उत्तर देने में अथवा उसे अपने प्रेम में अड़चन आने का भय था ?

"यह मोहन कौन है ?"– बाबा की पैनी दृष्टि रधिया पर जम गई।

"जात का बड़गूजर है, बहुत ही सीधा सादा है।"

"कहाँ रहता है ?"

"अपने पड़ोसी गाँव में।"

"क्या करता है ?"

"पहले तो खेती बारी करता था; लेकिन जब से साहूकार ने उसके खेतों पर कुड़की लाकर अपना दखल जमाया है तब से अेवड़० चराता है।"

"जगह-जमीन ?"

०भेड़ बकरियों के झुण्ड को अेवड़ कहते हैं।

"रहने का एक घर है, बस।"

"तेरे से उसकी जान-पहचान कितने दिन की है ?"

"बहुत दिनों की।"

"तू उससे कब-कब मिलती है ?" – बाबा द्वारा इतने प्रश्न किये जाने पर रधिया ने समझा कि उसका क्रोध खत्म हो गया है तभी तो वह मोहन के बारे में इतनी जानकारी प्राप्त कर रहा है अतः वह भी दिलचस्पी के साथ उत्तर देने लगी।

"जब जी चाहूँ तब मिल सकती हूँ !"

"मतलब ?"

"वह तो गोचर भूमि में हमेशा ही आता है।.....बाबा ! वह बंशी इतनी मीठी बजाता है कि सुनकर तबियत फड़क उठती है।....शहद से भी मीठी है और सच सच बताऊँ तो उसकी बंशी की धुन के मिठास के सामने शहद और गुड़ का भी मिठास फीका पड़ जाता है।"

"कैसा दीखता है ?"

"लम्बा-तगड़ा पट्ठा-सा। बड़ा भला लगता है बाबा।"

"पर रधिया तेरा व्याह उससे नहीं होगा। वह हमारा बैरी है, यदि मैंने उसे तुम्हें दे दी तो हमारे ठाकुर सा की नाक कट जायेगी।"

"बाबा !" – रधिया पर जैसे पहाड़ टूट पड़ा हो।

"जो मैं कहता हूँ, उसे कान देकर सुन, कल से तुम्हें डेरे पर रहना पड़ेगा। गोचर भूमि को आना जाना बन्द, समझी।"

"मैं डेरे में काम नहीं करूँगी।"

"तू नहीं करेगी तो स्वर्ग से तेरी माँ आकर करेगी, क्यों ?"–रेवतदान का तमाम क्रोध एक साथ उबल पड़ा। –"उधर ठाकुर सा मुझे मारने की धमकी देता है और इधर यह लज्जाबायरी० मुझे दुख देने के लिये ही

० बेशर्म।

तुली हुई है –सोच कर वह तड़प उठा। उसने समीप रखी लकड़ी मे रधिया को सटाक् सटाक् पीट दिया। रधिया बाबा बाबा कहकर चीखने लगी और बाबा उसकी चीख पर बिना ध्यान दिये लकड़ी को फेंककर, थप्पड़ मारते हुए पूछ बैठा –"बोल, अब जायेगी अपने छैले के पास, निकलेगी घर से बाहर ?"

"नहीं, नहीं बाबा, नहीं।" – काँपती रोती रधिया हाथ हिला कर कहने लगी।

"कल सीधी सीधी डेरे चली जाना, गोचर भूमि की ओर कदम भी बढ़ाया तो पाँव काट कर रख दूंगा। चली जा अपने कमरे में।" – रधिया रोती हुई चली गई।

बाहर ग्राम-बालिकाओं का रात के अन्धेरे को प्रकाश की किरण की भांति चीरता हुआ गीत गूंज रहा था।

"चाँद चढ्यो गिगनार किरयाँ ढल रही है जी
ढल रही है
अबै बाई धरै पधार, माऊड़ी मारैला जी, मारैला"

रेवतदान को ऐसा महसूस हुआ जैसे आज युगों के बाद किसी ने उसके सीने पर पत्थर रख दिया है जिसके कारण उसकी श्वाँस घुट रही है। उसने इतने जोर की श्वाँस ली; जैसे वह इस बात का पता लगाना चाहता है कि वास्तव में उसकी श्वाँस रुक तो नहीं गई है ? तब उसने धीरे धीरे अपने आप से कहा –"आज मैंने अपने जीवन में पहली बार रधिया पर हाथ उठाया, उस रधिया पर जिसको मैंने उस पेड़ की तरह पाला जिसके फल की आशा माली को थी।

गीत की ध्वनि अब भी आ रही थी। रेवतदान अपने आप पश्चा-ताप कर रहा था। वह सोच रहा था कि क्या रधिया अभी भी यहाँ बैठी रहती ?नही, भाग कर अपने मधुर कंठ के गीत से गाँव गूंजा देती। जाऊँ और कह दूं कि जा जाकर तू भी गा, इस गीत गाने मे ठाकुर सा

की नाक नहीं कटेगी, यह तो अपने ही गाँव का गंगा की भाँति पवित्र गीत है, जिस गाँव पर आकाश अपना प्यार लुटाता और तारें अपना दुलार बरसाते हैं।

और बाबा उठा। रधिया के कमरे के आगे गया। रधिया सिसकियाँ ले रही थी। उसकी सिसकियाँ सुनकर बाबा का कलेजा फटने लगा। उसने अपने दोनों हाथों को दाँतों से काट लिया।.....और फिर आकर अपने बिस्तर पर सो गया। गर्दन के तकिये के नीचे ठाकुर सा के दिये चाँदी के सिक्के पड़े थे। अचानक तकिये के सरकने पर दो सिक्के जमीन पर गिरकर प्राणी को मोहित करने की झंकार कर उठे। बाबा का ध्यान हठात् उन सिक्कों पर केन्द्रीभूत हो गया। वे ही गोल-गोल सिक्के—रोटी-से गोल, सूरज-से गोल, चाँद-से गोल, पृथ्वी-से गोल।

नाई के जीवन की अतृप्ति उसके हृदय को झकझोरने लगी। वह कह उठा—"यदि ठाकुर सा की कृपा हो गयी तो घर सोने का बना लूंगा। मुझे तो इसके हाथ कहीं न कहीं पीले करने हैं ही, अच्छा ही है, ठाकुर सा खुद ही इसके हाथ पीले कर दें, गाँव में रौब हो जायेगा और इस बुढापे में पशु की भाँति काम करने से भी पिंड छुट जायेगा। नहीं तो आगे चलकर इस बुढापे में कोई पानी देने वाला भी नहीं मिलेगा। कुछ नगदी और कुछ जमीन होगी तो सब तलुवे सहलायेंगे अन्यथा किसको क्या पड़ेगी जो आकर मेरी टहल चाकरी करेगा।...और ठाकुर सा का सिर पर हाथ रहने पर कौन माई का लाल ऐसा है जो सिर उठाकर फिर मुझे देख भी ले ?" —और रेवतदान का सीना गर्व से फूल गया। उसे महसूस हुआ कि ठाकुर सा की कृपा होते ही तमाम गोले मेरे सामने गर्दन झुकाने लग गये हैं। गाँव के चौधरी तक को आँख उठाने तक की मजाल नहीं हो रही है। सारे गाँव पर उसकी धाक हो गई है.....।

और पृथ्वी का प्राणी स्वप्न के पीछे छाया की भाँति भागने लगा —अपनी स्वाभाविक दुर्बलता के कारण।

१३

आज ठाकुर सा के साथ ठकुराइन वत्सला ने भी कसूम्बा पी लिया जिसके कारण उसकी चेतना लुप्त हो गई। नशे की उत्तेजना से वह अनर्गल अलाप करने लगी–"ठाकुर सा ! आप आदमी नहीं, पापी हैं, आप मेरे रूप की कद्र क्या कर सकते हैं ? आप तो गोलियाँ और गाँव की छोकरियों के साथ रंगरेलिया मनाया करते हैं और मैं इधर आपको पाने के लिये तरसती रहती हूँ।"

उसकी इन निराधार बातों से ठाकुर सा जब उकता गये तब वे झल्लाये से उठे और बाहर आकर उन्होंने हरिया नाम की गोली को वत्सला की सेवा में भेज और स्वयं बैठकखाने में आ गये। ठाकुर सा को बैठकखाने में प्रवेश करते हुए मेघले ने देख लिया था अतः वह ठाकुर सा के लिये हुक्का भर कर ले आया। हुक्के की नली को मुंह में डालते हुए ठाकुर सा ने मेघले को आदेश दिया –"उस नाई के बच्चे को बुलाकर ला तो !"

"रेवतदान को !"– मेघले ने आदेश को स्पष्ट करने के लिये पूछा। उत्तर में उन्होंने 'हाँ' के संकेत में सिर हिला दिया। मेघला चला गया।

हरिया को अपने समीप पाकर ठकुराइन उसकी गर्दन को पकड़ती हुई कर्कश स्वर में पूछ बैठी –"वह बुड्ढा कहाँ है ?"

हरिया उसके कहने का मतलब तो समझ गई थी अतः घबरा कर तुरन्त बोली –"बैठकखाने में।"

"झूठी कहीं की, वह अवश्य किसी गोली को लिये पड़ा होगा, तेरी ही जैसी फूटरीफरी छोरियाँ ही उनको चाहिये।"– नयनों को विचित्र ढंग से हिलाकर उसने कहा।

यह सुनकर हरिया को गुस्सा आ गया पर वह कुछ भी बोली नहीं। चुपचाप सुनती रही और ठकुराइन आँखें फाड़कर गुस्से में बोली –"आज कल हमारे ठाकुर सा रधिया पर आँख लगाये बैठे हैं। तू जानती है रधिया को, अरी वही, जिसने आज से काम के बहाने दीठी-दीठी० करने आना शुरू किया है। छोरी क्या है गुलाब का पुष्प है ? –"और न जाने कैसी कैसी बेसिर पाँव की चर्चा ठकुराइन ने की कि हरिया का माथा फटने लगा, लेकिन तुरन्त ही उसने वत्सला को देख कर ठंडी आह छोड़ी; क्योंकि वत्सला की आँखें लगने लगी थीं।

थोड़ी देर में कमरे में सन्नाटा छा गया। वत्सला नशे में अचेत, थोड़ी देर पूर्व अपने अन्तर का जो आक्रोश तथा गन्दे विचार प्रकट कर रही थी, उससे स्पष्ट जाहिर हो रहा था कि उसके मानस में अपने प्रभू के प्रति कैसी भावनाये है !

बैठकखाने में अकेले बैठे-बैठे ठाकुर सा के विचारों की केन्द्र ठकुराइन सा ही बनी हुई थी। वे सोच रहे थे –"क्या जीवन का वास्तविक सुख यही है ? लोग समझते हैं कि हम चैन की बंशी बजाते है,पर हर घड़ी एक नई समस्या हमारे सामने मुह फैलाये खड़ी रहती है। और यह ठकुराइन ?" घृणा ठाकुर सा की आँखों में तैर उठी। गर्दन कुछ सीने की ओर झुक गई –"दिन-दिन इसकी जवान का पर्दा हटता जा रहा है।" – ठाकुर सा का कथन सत्य था, लेकिन इस बात के जिम्मेवार भी वे ही थे। यह माना कि कई राजपूतों की अनेकानेक बहूएं ऐसी भी थी, जिन्हें उनके किसी भी कार्य से कोई सरोकार नहीं था। उनके पति क्या करते हैं, क्यों करते हैं ? इनसे उन्हें कोई वास्ता नहीं था; क्योंकि वे उनके आतंक से भयभीत थीं, अपना अस्तित्व उनके पाँव की जूती से बढ़कर नहीं समझती थी लेकिन जिस प्रकार पाँच अंगुलियाँ एक सी नहीं

० केवल अपने आने की सूचना देने।

होती, जिस प्रकार हवा का रुख सदा एक सा में नहीं रहता, उसी प्रकार ठाकुर सा की इस पत्नी ने कई बार ठाकुर सा के सम्मान पर प्रहार किया। न जाने क्यों ठाकुर सा की अकड़ वत्सला के सम्मुख अबोध बालक की उस मुद्रा की भाँति क्यों भोली बन जाती जिसको किसी ने डाँटा है और वह बालक भय से भयभीत न होकर भोलेपन से डाँटने वाले की ओर देखने लगता है –टुकुर टुकुर ।

आज दिन भर वत्सला विचारती रही थी। पहर तक उसने अपने नेत्र मूंद कर अपने हृदय के आंदोलन को रोकना चाहा। ठाकुर सा जब आये तब उसने अपने हृदय के कटु सत्य पर शिष्ट वाग्जाल का आवरण डालकर कहना भी चाहा; लेकिन वह आवरण डालनें में असमर्थ रही। पर कसूम्बे के नशे में उसने अपने हृदय का गुब्बार निकाल ही लिया। ठाकुर सा के अभिमान और सम्मान पर ऐसी करारी चोटें की कि ठाकुर सा तड़प उठे। और जब ठाकुर सा ने उसे घुड़की पिलाई तो उसने जोर से दाँत निकाल कर हँस दिया।

ठाकुर सा क्षुब्द्ध हो उठे थे। ठोकर से कलेजा निकाल देने की भयानक धमकियाँ दी थीं पर चिकने घड़ेपर पानी ठहरे तो वत्सला पर भी असर हो।

विवश हो ठाकुर सा ने वत्सला को दुलार कर पूछा –"आज आपने असमय कसूम्बा क्यों पी लिया ?"

अचानक प्यार पाकर वत्सला चौंक उठीं। –"सब कहते है कि कसूम्बा पीकर दुख को भूलाया जा सकता है, कष्ट दूर हो जाता है। इसलिये पी लिया।"

"आपको क्या दुख है ?" – ठाकुर सा का स्वर कोमल था –"जीवन के सारे सुख आपके चरणों में है फिर आपको दुख किस बात का है ?"

"दुख !" – आँखों में वत्सला की चिनगारियाँ जल उठीं –"जरा आप मुझ पर ध्यान दीजिये और बाद में अपने आप पर ? दुख आपकी आँखों के सामने नाचने लगेगा–सत्य की भाँति।"

भयानक प्रश्न सुनकर ठाकुर सा आपे के बाहर हो गये। चीख उठे –"ठकुराइन सा ! आप जानती हैं कि इस ढाँचे (तन) में हाल० तक वह दम है कि आप जैसी बीस लुगाइयों को व्याह कर ला सकता है। राजपूतों के खून का असर आप ने अभी देखा ही क्या है ?"

"झूठी आन सम्मान को मिटा देती है अन्नदाता।....आपने उस राजा की कहानी नहीं सुनी, जिसकी रानी अपने प्राणों को राजा पर न्यौछावर करने को तत्पर रहती थी। इसलिये कि वह राजा को बहुत चाहती थी और राजा भी उसे सीता-सावित्री कहकर पुकारा करता था। पर जानते हैं आप,उस सावित्री की कथा को ? मैं बताती हूँ–एक दिन वह राजा रानी से शिकार में जाने के लिये विदा माँगने आया। रानी पहले राजा को जाने देनेके लिये राजी ही नहीं हुई और अन्त में राजा के लाख बार कहने पर जब वह राजी हुई तो उसने अपने पति- परमेश्वर को अपनी सौगन्ध दिला कर कहा कि मैं आपकी पन्द्रह दिन तक प्रतीक्षा करूंगी यदि आप समय पर नहीं लौटे तो इन्हीं महलों की दीवारों से कूद कर अपने प्राण दे दूंगी।

राजा ने उसे भरोसा दिया और शिकार खेलने चला गया।

राजा शिकार खेलने तो चला गया पर उसका मन रानी की प्रतिज्ञा पर लगा हुआ था। रानी की प्रतिज्ञा उठते-बैठते, सोते-जागते उसके कानों में गूंजा करती थी और तब वह रानी की भयानक मृत्यु की कल्पना करके काँप उठता था।

उसे एक रात स्वप्न आया कि मैं शिकार में इतना मग्न हो गया हूँ कि पन्द्रह दिन चुटकी बजाते बीत जाते हैं। एकाएक उसे अपनी रानी का ध्यान आता है। वह पागल की भाँति चीख उठता है और घोड़े पर चढ़कर वह अपने शहर लौटता है। चार दिन का रास्ता वह एक दिन में तय करता है। पर अब क्या हो सकता था जब चिड़ियों ने खेत को चुग लिया है। महल के आगे बड़ी भीड़ लगी हुई है। सारी प्रजा के नेत्रों में

०अभी तक।

अश्रु हैं। राजा आशका मे सिहर उठता है। घोड़े से उतर कर वह सीधा महल में जाता है तो आँगन में उसे अपनी रानी का वीभत्स शव मिलता है।

रानी का चाँद सा सुन्दर मुखड़ा खून से लथपथ है। धूल उसके सुनहरे केशों पर लग गई है। लाल होंठ बीच बीच मे दाँतो से कटकर भयानक बन गये है, जो हृदय मे घृणा पैदा करते हैं। निचला जबड़ा चेहरे में धँस गया है। खून के छीटे इधर-उधर गिर कर जम गये ह। गोरा तन पीला हो गया है, सुना है कि मरने के बाद खून पानी बन जाता है। एक टाँग टूट कर लटक गई है।

राजा ये सब देखकर चीख उठा।

सपना टूट गया अन्नदाता! राजा ने अपना घोड़ा सभाला और साथियों के लाख मना करने पर अपने शहर लौट आया।

और सावित्री सी पतिव्रता रानी ?

अन्नदाता! उसने एक अश्वपाल याने साईस से अपनी साँठ-गाँठ कर रखी थी। अश्वपाल उससे प्रेम नही करता था, लेकिन वह जानता था कि रानी की अवज्ञा पर उसे प्राण दंड तक मिल सकता है। इसलिए मजबूर था बेचारा।"

यह सुनकर ठाकुर सा की भृकुटियाँ तन गईं। उन भृकुटियो के भावो को लक्षित करके ठकुराइन बोली—"आप अपनी त्यौरियाँ क्यो बदलते ह ठाकुर सा, यह तो कहानी है—तो राजा ने बिना किसी से कहे सुने रणवास० में प्रवेश किया। मिलने की इच्छा बहुत तीव्र थी अतः कदम इतने तेजी से बढ़ रहे थे कि दास-दासियों को भी सभलते नही बना। वहाँ जाकर राजा ने देखा तो आँखों को विश्वास नही हुआ। सोचने लगा कि यह स्वप्न तो नहीं है, इसलिये उसने अपनी कटार से अपने हाथ को चीरा। लाल-लाल लहू टपका पर आँखो के आगे का दृश्य वैसे का वैसा ही रहा।

० अन्तःपुर।

रानी अश्वपाल की गोद में सोई हुई थी और अश्वपाल उसके साथ....! अन्नदाता ! वह राजा बड़ा बुद्धिमान था। वहाँ से सीधा लौटकर उसने अपने दीवान से कहा –'मैं सन्यास लूंगा।'

दीवान अपने राजा की इस बात को सुनकर चकित रह गया। विस्मय विमूढ़ सा इधर से उधर और उधर से इधर ताकता रहा। हाथ जोड़कर हकलाता हुआ बोला –'प्रजापति ऐसा क्यों ?'

'यह संसार नश्वर है, यह देह क्षणिक है इसलिये राम का भजन करके परलोक को सुधार लेना चाहिये।'

इसके उपरान्त कितने ही व्यक्तियों ने उसे समझाया-बुझाया पर राजा की प्रतिज्ञा अटल रही। दूसरी रानियाँ उसके पाँवों में पड़कर रोईं। वह कुल्टा-छिनाल रानी भी आई। उसकी आँखों में आँसू थे। सच्चे आँसू नहीं, खोटे, दिखावटी। राजा ने उस रानी को देखकर बिना प्रसंग ही एक बात कहा –'पुरुष के भाग्य का और स्त्री के चरित्र पर कभी भरोसा नहीं करना चाहिये दीवान जी। भगवान ! आप सब को सद्-बुद्धि दे।'–और राजा राज-पाट छोड़ कर चला गया।

वत्सला एकटक दृष्टि से जसवन्त सिंहजी को देखने लगी। अन्तिम वाक्य सुनकर ठाकुर सा गर्ज उठे –"राजा ने किसी क्षत्राणी का दूध नहीं पिया था, वह किसी गोली के पेट से जन्मा होगा।"

ठकुराइन ने ठाकुर सा के वाक्य को सुनकर विश्वास भरे स्वर में कहा–"नहीं ! ठाकुर सा वह क्षत्राणी की कोख से ही पैदा हुआ था।"

"हम नहीं मानते, यदि वह राजपूत होता, तो उस छिनाल के टुकड़े टुकड़े कर देता।" – ठाकुर सा पुनः तमतमाये।

"कैसे कर देता, जानते हैं आप, वह उस राजा की पन्द्रहवीं रानी थी, चौदह तो पुरानी हो चुकी थीं, उनका रूप और जोबन ढल चुका था, तभी तो कहती हूँ ठाकुर सा, स्त्री की तृष्णा बड़ी बलवती होती है, शक्ति से

नहीं, प्रेम से शान्त होती , प्रेम भी वैसा, निर्मल जल की भाँति साफ सुथरा ।"

"आप नशे में हैं ?"– ठाकुर सा ने हठात् प्रश्न किया –"ऐसी ज्ञान की बातें तो.....।"

"अन्नदाता !" – कहकर ठकुराइन ने कसूम्बे का प्याला अपने होठों से लगा लिया। ठाकुर सा झल्ला पड़े –"हम, हम उस छिनाल को बैल-गाड़ी के चक्के के नीचे दे देते ।" – कहकर बाहर चले गये ।

ठाकुर सा इन बातों के घातों से विचलित हो उठे थे। उन्हें बार बार ऐसा महसूस हो रहा था कि उनका जीवन भी वैसी ही भयंकर विकृति के किनारों से टकराने वाला है ।

रात की शून्यता सजीव सी चलती अपना गहरा प्रभाव सब स्थानों पर जमा चुकी थी। बिल्कुल निस्तब्धता होने की वजह से स्वयं शून्यता की गूंज गूंजने लगी थी। कभी कभी चमगादड़ों के उड़ने का कर्ण-अप्रिय स्वर सुनाई पड़ने लगता था। तो कभी कभी उल्लू घूंघूंऽऽऽऽऽऽ करके बोल उठते थे ।

"घणी घणी खम्मा अन्नदाता ।" – रेवतदान प्रणाम करके बैठा । ठाकुर सा ने उसको कोई उत्तर नहीं दिया । केवल भेदभरी दृष्टि से देखते रहे ।

"हुक्म अन्नदाता !"

"आज रेवतदान तू मौत घाट अवश्य उतार जाता,यह तो तेरे पुरखों के पुण्य ही काम आ गये वर्ना अभी तो तुम्हें लोग जला कर ही आ जाते।" ठाकुर सा आँखों को गंभीरता से विस्फारित करके बोले ।

"ऐसी कौन सी बात हो गयी माई-बाप ?" –रेवतदान की आँखों में भय चमक उठा ।

"अरे वही रधिया वाली बात मुंह से निकलती-निकलती रह गई ।

तू जानता है कि राजपूत और तो सब कुछ सह सकता है, पर अपनी आन पर आँच नहीं आनें दे सकता।"

"....."—रेवतदान हाथ जोड़े बैठा रहा।

"रेवतदान ! हम ठहरे गाँव के राजा, प्रजा के दुख-सुख और भले बुरे का ध्यान रखना हमारा धर्म है। और इस पर तू ठहरा हमारा चाकर, इसलिये मैं प्रायः सोचा करता हूँ कि बुढ़ापे में तेरे पास दो पैसे होंगे तो सब पूछेंगे वर्ना कुत्ता भी तुम्हें नहीं सूंघेगा। – ठाकुर सा ने इतना कहकर ठंडी आह छोड़ी। रेवतदान के चेहरे पर प्रसन्नता की रेखायें नाच गई —अपने कमाई से हृदयहीन ठाकुर सा की इतनी आत्मीयता पाकर।

ठाकुर सा सांत्वना की साँस लेते हुए पुनः बोले—'न तेरे पास पैसा है, न जेवर,और न जमीन है और सबसे फूटे कर्मकी बात यह है कि तेरे कोई कपूत-सपूत बेटा भी नहीं है। ऐसी हालत में तुम्हें जरा सोचना चाहिये।' कहते कहते ठाकुर सा की आकृति पर चिंता की रेखायें उभर आईं। रेवतदान आनंद अतिरेक में निहाल-सा हो गया। स्वर्णिम भविष्य धान की हरी बाल की भाँति उसके सामने नाच उठा। हकलाता हुआ बोला —"मैं तो आपका चाकर हूँ, जैसा कहेंगे, वैसा ही करूंगा।"

"हमने निश्चय किया है कि तुम्हें दस बीघा जमीन दें और पाँच रुपया नगद महीना। रही रधिया की बात, उसके लिये भी कोई रास्ता निकाल देंगे। पर हाँ, वह गोचर भूमि की ओर न जाने पाये।" —रेवतदान कुछ बोले उसके पहले ही ठाकुर सा पुनः बोले—"घबराने की कोई बात नहीं हम जानते हैं कि अब तू बुढ़ा हो गया है, तेरे हाँडों में पहलेवाली शक्ति नहीं रही हैं, इसलिये तो हम कहते हैं, आजसे तू सुबह-शाम हमारा हुक्का भरा करेगा। यजमानी को मार लात, और सुख से खा दो टुकड़े।"

"लेकिन ये गाँव वाले क्या कहेंगे, वे नाराज हो गये तो ?"

"तो तेरा क्या बिगड़ जायेगा, रानी रुठेगी तो अपना सुहाग लेगी।"

"लेकिन मुझे गाँववाले यह तो जरूर कहेंगे कि.....।"

"समझा ! कहेंगे कि बेटी बेचकर सुख खरीद लिया ? अरे पगले ! ठाकुर जसवन्त सिह जी के क्रोध को नहीं देखा है, बिगड़ जाऊँगा तो आस-मान-जमीन एक कर दूंगा, कोई जबान भी हिला देगा तो उसकी जबान कटवा दूंगा।" – आँखों में उनके कठोर और कृपण भाव एक साथ चमक उठे।

"मैं जानता हूं अन्नदाता, जीभ हिला कर भी क्या कर लेंगे, नई बात नौ दिन, खीची तानी तेरह दिन।" – रेवतदान ने ठाकुर सा की भड़कती हुई क्रोध की स्फुलिंग को अपने आत्म-समर्पण की बात कहकर बिलकुल ठंडी कर दी।

"अब तू जा, और ले ये पाँच रुपये पेशगी।" – ठाकुर सा ने कुत्ते को रोटी डाली, कुत्ता पूंछ हिलाने लगा। कबूतर के सामने दाना डालने के साथ जाल फैला कर उसे फँसा भी लिया, उसने पर नहीं फड़फड़ाये। लोहे के पिंजड़े में हरी मिर्चें रखकर तोते को बन्द कर दिया और तोता उस मिर्च के लिये जीवन भर की कैद स्वीकार करने को तैयार हो गया।

रेवतदान रुपये लेकर अन्नदाता की खम्मा खम्मा करता चला गया।

ठकुराइन के कमरे में अभी भी प्रकाश जगमगा रहा था। हरिया घृणा से आँखें तरेरती हुई वत्सला की कै साफ कर रही थी। कै होने के के पश्चात वत्सला की चेतना लौट आई। उसने अर्धखुली आँखों से हरिया को देखकर टूटते हुए स्वर में कहा –"हरिया ! मेरे बेटे लधिये को भेज कर तू अपने धंधे लग।"

हरिया चली गई। वत्सला ने सिर पर हाथ रखा तो उसे प्रतीत हुआ कि उठा हुआ तूफान चला गया और मस्तिष्क काफी हल्का हो गया। नशे में उसने क्या क्या कहा, उसका उसे तनिक आभास था। एकाएक उसकी दृष्टि आदम-कद शीशे पर गई। जाकर वह प्रतिविम्ब पर जम गई। जमकर मस्तिष्क में आत्मग्लानि के रूप में झँझा सी उठी। उसे अपने आप पर तरस आया। वह सोचने लगी कि लधिये के साथ उसका

जो सम्बन्ध है, वह कितने दिन तक छिपे रह सकता है ? यह तो पाप है, अधर्म है, यह अधिक दिन तक नहीं छिप सकता ।.....गन्दगी तो बू देगी, पर मुझे उसे ढक कर रखना चाहिये । ओह ! जब लधिया उसके पास आता है तो कितनी भयानक ये दीवारें हो जाती हैं ? सबके सब जड़ पदार्थ चेतन की भाँति सजग होकर उसके पाप को काटने लगते हैं ।".....और काँपती हुई वत्सला उठकर अपना सिर पकड़ कर पुनः बैठ गई । उसकी आँखों के सामने एक राजपूत के पाप की कहानी के साथ उस कहानी का अन्त भी नाचने लगा जिसके अन्त में इतनी ही पंक्तियाँ थीं –इस सामन्तवाद की सब प्रकार की गन्दगी को एक स्थान से निकाल कर यदि दूसरी जगह रख देंगे तो वह अवश्य किसी दूसरे स्थान पर अपना अड्डा जमा लेगी, तकाजा है, उसी गन्दगी से कि वह अपना नाश स्वयं कर ले ।.....अनैतिकता के विषाक्त पंजे में आवर्त सामन्तों की संस्कृति और सभ्यता का सूर्य झूठी आन-शान, घोर अत्याचार के कारण मृतप्राय सा हो गया है –अवशेष के रूप में यही जसवन्त सिंह और वत्सला है । इनके मरने के साथ साथ यह दीया अवश्य बुझ जायेगा और बुझकर ही रहेगा ।

"ठकुराइन सा को खम्मा !" – लधिये बेटे ने कहा ।

ठकुराइन चीख उठी –"चले जाओ !" – लधिया हठात् सा एक क्षण देखकर जाने को बढ़ा । द्वार से निकलने लगा कि ठकुराइन ने मधुर स्वर में पुकारा –"लधिया !"

लधिया इस नाटक का तात्पर्य नहीं समझ सका । वह पुनः हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया । उसने इतना अवश्य देखा कि ठकुराइन अपने ललाट की पसीने की बूंदों को पोंछ रही है । सीने को हाथ से दबा कर आश्वस्त हो रही है जैसे किसी भयंकर घुटती हुई विषाक्त बात को कलेजे से पेट में उतार कर पचा रही है ।

ठकुराइन ने उस मशीननुमा इन्सान को अपनी अंक में लेते हुए कहा

—"तू आदमी है या जानवर, न तेरे में नखरा, न तेरे में चाह, पुतले की भाँति जैसा मैं कहती हूँ, वैसा करता रहता है,.....बड़ा निठल्ला है तू।" —ठकुराइन की आँखों में जो कुछ देर पूर्व भय और ग्लानि थी, वह वासना के रूप में बदल कर चमकने लगी।

तब लधिया ठकुराइन की अंक से मुक्त होकर, उसके पाँवों को पकड़ कर आर्द स्वर में गिड़गिड़ा उठा —"मैं तो आपका चाकर हूँ ठकुराइन सा, जैसा आप हुक्म देंगी, वैसा ही मैं करूँगा,आपके हुक्म बिना तो मेरा पत्ता भी नहीं हिल सकता।" — उसकी गिड़गिड़ाहट में इस कार्य से मुक्ति पा जाने की प्रार्थना थी जैसे इस प्राणी की भावनाएं छटपटा रही हैं— जंगल की पक्षी की भाँति।

"अरे यह तो ठीक है पर क्या कभी तेरी इच्छा भी नहीं होती कि मैं ठकुराइन सा के पास चला जाऊँ ?"

"नहीं ठकुराइन सा ! मैं तो आपकी इच्छा को ही अपनी इच्छा समझता हूँ।"

"इसके माने तो यह हुआ कि तू अपनी इच्छा को मारता है।"

"कैसे ?" —तपाक् से पूछा लधिये ने।

"तू नहीं जानेगा, जा दीया बुझा दे।"

लधिया दीया बुझाने के लिए तैयार हुआ ही थी कि कमरे का दरवाजा खटखटाया गया। एक पल के लिये ठकुराइन घबराई और दूसरे पल ही आगन्तुक कौन हो सकता है, समझ कर अकड़ कर बोली —"लधिये बेटे ! ठाकुर सा को दरवाजा खोल दे।"

ठाकुर सा स्तंभित हो गये। ठकुराइन सा को यह मालूम हो गया कि हम ही आये हैं। लधिये ने दरवाजा खोला। ठाकुर सा ने प्रवेश करके झुकी हुई निगाहों वाले लधिये को देखा। उसे देखते ही उनका सन्देह जाग्रत होकर उनको काटने लगा। — बन्द कमरे में लधिये का क्या काम हो सकता है ? सोचकर ठाकुर सा उबल पड़े —"क्या कर रहा है यहाँ ?"

–लधिया सिर से पाँव तक काँप गया। ठकुराइन उसको संभालती हुई बोली –"यह क्या बतायेगा, मैं बताती हूँ ?"– कड़क कर ठकुराइन पुनः भड़की –"अपनी माँ को अपना दुखड़ा सुना रहा था। कह रहा था –अब मेरा व्याह कर दीजिये।"

"लेकिन दरवाजा क्यों बन्द था ?" – ठाकुर सा झल्लाये।

"बन्द था भी तो क्या हो गया ?"

"ठकुराइन ?" – ठाकुर सा चीख उठे।

"ठाकुर सा ! आप पर तो वह चरितार्थ ठीक सिद्ध होती है कि साठी बुद्ध नाठी।"

"मतलब ?"

"आपको कोई साहूकार मालूम भी पड़ता है। माँ और बेटे पर शक, चोर के जी में सदा चानणा० ही रहता है।" – ठकुराइन ने घृणा से मुंह बिचका कर दूसरी ओर घूमा लिया।

लेकिन ठाकुर सा के कानों में राजा-रानी की कहानी गूंजने लगी। उनकी चलती हुई पलकें कभी ठकुराइन पर और कभी लधिये पर जमती थी। उन्हें भास होने लगा कि ठकुराइन सा वही रानी और लधिया वही अश्वपाल है। दोनों प्रेम करते हैं। आपस में एक दूसरे को .....।

"नहीं, यह नहीं हो सकता।" – ठाकुर सा तड़प उठे। ठकुराइन ने झपटकर उन्हें संभाला –"आपको तो बहम हो गया है ठा कुर सा,..... लधिया बेटा, तू जा।" – लधिया तुरन्त चला गया।

ठकुराइन ठाकु र सा को मौचे पर बिठाती हुई बोली –"बहम की कोई दवाई नहीं है, जरा सोचिये तो सही, यह बात कोई और सुनेगा तो मेरी इज्जत क्या भाव बिकेगी ! आज जब आप मेरी इज्जत की खिल्ली उड़ाते हैं, तो कल तो सारा गांव इसका ढिंढोरा पीट ही देगा।"

---

० प्रकाश।

"लेकिन ठकुराइन सा, कल से लधिया यहाँ नहीं सोयेगा, यह मेरा हुक्म है ।"

"जैसी आपकी मर्जी, पर इस आशंका को आप अपने मन से निकाल ही दीजिये, कि एक क्षत्राणी अपनी मर्यादा से डिग जायेगी ।" – स्वर में अभिमान था ।

"……!" – ठाकुर सा उसे विस्मय से देखते रहे ।

"ठाकुर सा ! मैं हिन्दू नारी हूँ, पति मेरा परमेश्वर है और आप ..?"

"अच्छा ! अच्छा ! अब अधिक बातें न बनाइये, हम आराम करेंगे ।" ठाकुर सा सो गये । उनकी बन्द आँखों के अन्धेरे में रधिया का सलोना मुख प्रकाश की भाँति चमकने लगा । उन्होंने सोचा कि रधिया क्षत्राणी है, नीचे घर की है । और इस साले नाई का क्या भरोसा ? लोभ के मारे सब बातें झूठी ही करता हो, असल में यह रधिया उसी की ही बेटी हो तो कोई ताज्जुब नहीं । सोचते-सोचते ज्योंही उन्होंने आँखें खोली त्योंही दीये को जलते हुए पाया । जलता हुआ दीया उन्हें अच्छा नहीं लगा अतः उन्होंने ठकुराइन को दीये को बुझाने के लिये कहा ।

लपक कर ठकुराइन ने अपनी ओढ़नी के झटके से दीये को बुझा दिया

अन्धेरे में ठाकुर सा के अन्तराल की वासना के समक्ष रधिया और विचार के सम्मुख ठकुराइन नाच उठी ।

रात ढलने लगी ।

१४

तीन दिन बीत गये ।

इन तीन दिनों में ठाकुर सा के जीवन से न जाने कितनी घटनायें टक-

राई होंगी, उनके मन, उनकी चेतना, उनकी भावना और उनकी तीव्र लालसाओं के मध्य कैसे कैसे भीषण आंदोलन उठे होंगे, यह उनके मुख की उठती-मिटती रेखायें ही बता सकती थीं।

रधिया उनकी वासना की तृप्ति के रूप में उनके सम्मुख विवस्त्र सी घूम रही थी और ठकुराइन वत्सला भयानक बौद्धिक संघर्ष की केंद्र बनी हुई थी। यही कारण था कि कभी कभी ठाकुर सा मस्तिष्क के घोर संघर्ष से संज्ञाहीन हो उठते थे, मूक बैठे रहते थे –आँखें शून्य में विस्मृत कर। कभी कभी उनकी आकृत्ति पर आक्रोश की भयानक रेखायें उठ जाती थीं जैसे वे किसी को मन ही मन जली कटी सुना रहे हैं।

आज सवेरे सवेरे जब प्रकृति के अनुपम उपहार सूर्य की इन्द्र धनुषी रश्मि के सेतु पर आलोक उतर रहा था तो ठाकुर सा अपने चित्त की उद्विग्नता को मिटाने के लिये तीन रात के बाद ठकुराइन के कमरे की ओर बढ़े। रास्ते में उन्हें रधिया मिल गई। ठाकुर सा उसे देखकर ठिठक गये पर रधिया इस तरह कतरा गई जैसे उसने ठाकुर सा को देखा ही नहीं है। तब ठाकुर सा ने पुकारा –"रधिया !"

"हुक्म अन्नदाता !" – सिर झुकाकर कहा रधिया ने।

"तुम्हें दुख-वुख तो नहीं है।"

".....!" –उसकी आँखें हठात् ठाकुर सा के चेहरे पर जम कर बोल उठीं– आपकी छत्रछाया में सुख किसे है ?

"जा, अपने बाबा को दोपहर को आने के लिये कह आ।"

रधिया चली गई। उसने प्रणाम तक नहीं किया। ठाकुर सा मन ही मन कह उठे –"थोड़ी सी और ठहर जा तू, सारे नखरें भूला कर रख दूंगा।"

दो कदम आगे बढ़ कर देखा तो वे सन्न से रह गये। उन्होंने देखा –ठकुराइन पलँग पर सोई हुई है और लधिया उनके सामने खड़ा है। लधिये की आँखें काम लोलुप हैं और ठकुराइन की अर्धनग्न देह, चोली

विहीन छाती.....ओह !..... ठाकुर सा का खून खौल उठा। तमक कर उन्होंने दीवार पर लगी तलवार उठाई। उसके उतारने पर सर्रर्र् की जो ध्वनि हुई, उसने ठकुराइन और लधिये को सावधान कर दिया। लधिया हक्का वक्का रह गया पर ठकुराइन विचलित नहीं हुई। सिंहनी की भाँति गरजती हुई बोली –"आप क्या बार बार तलवार निकालते हैं। उस रोज रो रोकर समझाया था आज फिर वचपना करने आ गये।"

"ठकुराइन सा ! अब हमें बनाने का जतन करिये मत।" – ठाकुर सा ने क्रोध से होठ काटते हुए कहा।

"मैं आपको क्या बना सकती हूँ काठाकुर सा ! आपको बनाने वाले ने तो बना ही दिया। न मालम कौन सी घड़ी में गढ़ना शुरू किया था कि बस सन्देह ही सन्देह दिखलाई पड़ता है।" – घृणा से मुंह घुमाती हुई ठकुराइन बोली।

"तो.....?"

"क्या 'तो-तो' लगा रखी है आपने ? कोई न बोले तो आप उसके सिर पर चढ़ जाते है।" – बरस पड़ी ठकुराइन।

"ठकुराइन।" – ठाकुर सा ने तलवार निकाल कर वार करना चाहा पर तलवार का वार जहाँ का तहाँ रुक गया। ठकुराइन कर्कश स्वर में रोती हुई फफक पड़ी –"मार दीजिये न, चिड़चिड़े सुहाग से तो रंडापा० ही चोखा, मैं कहती हूँ कि उतार दीजिये मेरी गर्दन, कर दीजिये धड़ को अलग,..... न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी।" –रोना ठकुराइन का बढ़ता ही गया। कमरे की दीवार की ओट में डेरे के कुछ व्यक्ति कान लगाकर सुन रहे थे। एकाएक ठाकुर सा की दृष्टि लधिये पर पड़ी। उसे देखते ही उनका क्रोध उबल पड़ा –"कम्बख्त के बच्चे, तू खड़ा खड़ा क्या देखता है, जा यहाँ से।" – और ठाकुर सा ने

०वैधव्य।

तड़ातड़ चार पाँच मुक्के-थप्पड़ लधिये के जमा दिये। लधिया चिंघाड़ उठा –"माँ, ए माँ मुझे बचा लो।"

"माँ के सपूत बेटे, भाग यहाँ से, नहीं तो मार कर कचूमर निकाल दूंगा।" – लधिया भाग गया। उसके रोदन में गुलामों की वह वेदना और तड़प थी जो युगों से सत्ताधिकारियों और पूंजीपतियों के असह्य अत्याचार सहते सहते उत्पन्न हो गयी थी।

"आप किसी को घुला घुला कर क्यों मारते हैं ठाकुर सा, एक साथ ही जहर दे दीजिये न ?"– ठकुराइन ने अपने आँसुओं को पोंछते हुए कहा –"आज से इस डेरे से ही अभागे लधिये को निकलवा दीजिये।"

ठकुराइन ने इतना कहकर ठाकुर सा की ओर इस कथन की प्रतिक्रिया को जानने हेतु ताका। ठाकुर सा स्थिर थे। उनकी आँखें विस्फारित थीं। ठकुराइन ने तुरन्त आग की लपटों पर शीतल जल बरसाया –"मुझे आपकी खुशी चाहिये ठाकुर सा ! एक क्षत्राणी के भाग्य में इससे बड़ी खुशी क्या होगी कि वह अपने पति के चरणों में अपना जीवन बलिदान कर दे।"

ठाकुर सा को विदित हुआ कि वास्तव में ठकुराइन सा पर उन्होंने जो सन्देह किया वह मिथ्या है।

ठकुराइन ने अपनी पतिभक्ति का खूब सुन्दर सशक्त अभिनय किया–"इसे आज ही नत्थू की भाँति खेत को भेज दीजिये, भगवान करेगा और आपकी कृपा होगी तो मेरी खुद की ही गोद भर जायेगी।"– ठकुराइन उनके सन्निकट आई। उनके सीने के एक ओर अपना सिर रखकर दूसरी ओर हाथ फेरती हुई बोली –"मैंने सुना है कि आप रधिया को पदयितण० बनाना चाहते हैं।"

---

० विशेष सम्मानित रखेल जिसका स्वामी के जीवित रहने पर बहुत हक रहता है।

"यह आपको किसने कहा ?" –चौंककर पूछा ठाकुर सा ने।

"वाह जी, जैसे मैं दूधमुही बच्ची ही हूँ, ठाकुर सा ! मुझे तो कोई न कोई कह ही जाता है।" –ठकुराइन के स्वर मे कोमलता थी।

"आपको इसमे कोई एतराज है ?"

"मुझे, क्यो ठाकुर सा, मेरा औसर० कौन सा बिगड जायेगा, पटरानी तो मैं ही रहूंगी।" – घमड से ठकुराइन ने कहा। लेकिन ठाकुर सा समझ गये कि इससे ठराइन के हृदय पर आघात लगा है। अतः उन्हे राजी करने हेतु खिसियाते हुए बोले –"ठकुराइन सा ! आप तो जानती है ही, हां, हमे आप माफ कर दो कि हमने आपको बुरी नजर से देखा, लधिया आपके पास ही रहेगा, वह तो आपका बेटा.....।"

"नहीं, नही, ठाकुर सा, जिस काम मे आपका जी भरे, आप वही काम करे।"

"हम जानते है –क्षत्राणी के खून को।" – कहते कहते ठाकुर सा कमरे से बाहर हो गये। ठकुराइन एक विद्रूप की हँसी हँस पडी।

ठाकुर सा वहाँ से बैठकखाने मे आकर प्रसन्नता से हुक्का गुड़गुडाने लगे। आज उन्हे इस बात की प्रसन्नता थी कि ठकुराइन सा को भी रधिया के मामले मे किसी प्रकार की आनाकानी नही है। अतः वे बडी उत्कठा से रेवतदान की प्रतीक्षा करने लगे।

दोपहर होने के साथ ही रेवतदानने ठाकुर सा की बैठक मे प्रवेश किया ठाकुर सा ने उसे देखते ही कहा –"हमने तय कर लिया कि रधिया को हम अपने पास ही रखेगे।"

"अन्नदाता !"– रेवतदान की आँखे फट गईं। उसे महसूस हुआ कि यह ठाकुर गाँव की लड़कियों का बाप नहीं, खसम है।

"क्या आँखे फाड-फाड़ कर देखता है अन्नदाता के बच्चे ? हम रख

---

० बारहवें दिन का भोजन।

लेंगे तो कौन सी तेरी इज्ज़त लुट जायेगी। जब वह मटक मटक कर हमारे दुश्मन केसरी सिंह के गाँव के छोरे मोहन के पास जाती, उस समय तो तेरी आँखें फूट गई थीं। देख ! रेवतदान ! हमसे अधिक टसर-मसर० करेगा तो हम फिर ठहरे छत्री।"

"नहीं, नहीं अन्नदाता !" –रेवतदान घबड़ा कर हकला उठा।

"समझे, देख रेवतदान और सुन,तेरी तो अपनी जाई नहीं है,न मालूम किस ढोली-चमार की जात होगी।" –ठाकुर सा के इतना बोलते ही रेवतदान ने रधिया के बारे में सच सच बताना चाहा कि ठाकुर सा अकड़ कर बोले –"पूरे दो सौ नगद दे दूंगा।"

"दो सौ !" –रेवतदान यह सुनते ही चमगूंगा+ हो गया। इतनी बड़ी रकम की पा जाने की कल्पना मात्र से उसका अंग-प्रत्यंग सिहर-सा गया। और वह पुनः सत्यता को निगल गया।

"आप मेरे बारे में बुरा थोड़े ही सोचेंगे।" –रेवतदान के स्वर में पूर्ण मृदुता थी। जैसा उचित समझते हैं, वैसा कर लीजिये।"

"हम इसे अपनी पर्दायतण बनाना चाहते हैं।" –ठाकुर सा ने मूंछों पर ताव दिया। रेवतदान सोच उठा –"अपना क्या जाता है इसमें, किसी राजपूत की बेटी, राजपूत को व्याह दी जाये, तो इसमें क्या बुरा है ? यदि राजपूत की नहीं होगी तो किसी कुँवारी छोरी या विधवा का पाप होगी ही, अच्छा ही हुआ कि यह चोखे ठौर ठिकाने लग गई।" और उसे एकदम रामले माली की बात याद आ गई जिसने पचास वर्ष की अवस्था में, अभी ही सौ रुपये देकर एक मालिन को अपने घर में डाला था। वह भी तो सौ रुपये देकर किसी नाइन को घर में डाल कर दो रोटी पकाने का सुख ले सकता है। और वह अपने आप निर्णय करके बोला –"जैसी आपकी मर्जी माई-बाप !"

०इधर-उधर, +चकाचौंध।

"ले ये सौ रुपये पेशगी।" – रेवतदान ने रुपये ले लिये। ठाकुर सा ने एक बार उस पर और रौब जमाया –"सुन रेवतदान, इन रुपयों से हमने तेरी रधिया को खरीदा नहीं है, रधिया को तो हम अपनी पर्दायतण ऐसे ही बना सकते हैं, समझे !" –अपने घमंड का प्रदर्शन ठाकुर सा ने किया।

"जानता हूँ, जानता हूँ।" –रेवतदान उठा। उसके सामने फिर रामले माली की बात नाच उठी जिसने सौ रुपये देकर मालिन को अपने घर में डाला था। उसे याद करके वह भी सोच बैठा –"वह भी एक नाइन को अपने घर में डालेगा, उसके पास पैसा है।" और 'खम्मा अन्न-दाता' करके वह चलता बना।

दो घंटे बाद ही यह बात, कि ठाकुर सा रधिया को अपनी पर्दायतण बनायेंगे, हवा की भाँति गाँव में फैल गयी। जब रेवतदान घर से बाहर निकला तो सब ने बस उससे एक ही बात पूछी–"रेवतदान जो हम सुन रहे हैं, क्या वह सच है ?"

"हाँ भाई सच है, ठाकुर सा के जोर के सामने मुझ नाई की क्या चल सकती है।

नीची जात वालों, जैसे धोबी, माली, मोची, बढ़ई और सुनार आदि ने तो यही कहा कि अच्छा ही किया तू ने कि लड़की को महलों की रानी बना दी वर्ना कहाँ कहाँ की ठोकरें खाती।

पर ऊँची जात वालों, यानी बनिये और ब्राह्मणों ने तो उसे फटकार करके यही कहा कि तू ने बच्ची को नरक में ढकेल आया है। तू ठाकुर सा की धमकियों से न डर, हम सब संभाल लेंगे, पर जब श्रीगणेशमें ही खोट है तो हम क्या करें ? जहाँ भौं भौं चले गण्डत की, वहाँ क्या सुनाई पण्डित की।"

और साहूकार छगनराम ने कहा –"अरे चाण्डाल ! तू ने रधिया को ठाकुर सा को नहीं सौंपा है, एक गाय को कसाई के हाथ सौंप आया है।"

इस पर रेवतदान को गुस्सा आ गया था। वह बक् बक् करने लगा तो साहूकार ने उसे झिड़क दिया–"मैं तेरा ताव नहीं झेलूंगा, ताव दिखा अपने ठाकुर को, जिसको तू ने अपनी बेटी दी है। बेचारी चण्डी का तू ने जीवन नाश कर दिया।"

"देख छगना, अब तू चुप हो जा।" –रेवतदान इतना बोलने ही पाया था कि गाँव का मोटचार लट्टू आ गया। वह आकर ध्यान से उसकी बातें सुनने लगा। रेवतदान काला पीला होकर गर्ज रहा था –"मैं जाकर तेरी ये बातें ठाकुर सा से कह दूंगा।"

"क्या कर लेंगे ठाकुर सा ?"–लट्टू भभका–"आज तो तेरी बेटी को पर्दायतण बनाया है और कल किसी और पर नजर रखेंगे, यह कोई ठाकुरों के काम हैं ?"

"नहीं तो तेरे जैसे सट्टूघसियों का काम है ?" –रेवतदान ने अपना मुंह बेडौला बना लिया।

"छोड़ो न साहूकार जी, किस सिरफिरे से पाला डाल रहे हैं। आखिर जात का भी तो कुछ असर होगा ही।" लट्टू की उपेक्षा पर रेवतदान तड़प कर चलता बना। थोड़ी ही दूर गया ही नहीं था कि उसे मैना मिल गई। मैना उसे देखते ही सावन के घनघोर बादलों के बीच कड़कती हुई बिजली की भाँति कड़क उठी –"अब तो कलेजा ठंडा हो गया, रात को आराम से टाँग पसार कर सोना बाबा ! अब तो ठाकुर सा के गद्दे मिल गये हैं।"

"क्यों बक बक करती है ?"

"ओह ! आपके सामने बक बक कैसे कर सकती हूँ। ठाकुर सा के चाकर जो हैं।" व्यंग भरे आघात पर आघात करने लगी मैना –"अभी तो पाँचों अंगुलियाँ घी में होंगी।"

"तू अपनी जबान पर लगाम लगायेगी या मेरी झापड़ खायेगी।" –रेवतदान ने गर्ज कर डाँट पिलाई।

"मैं रधिया नहीं हूं, समझे ? जिसको तू ने बली की बकरी बना दी और उसने चूं चप्पड़ भी नहीं किया और यहाँ थप्पड़ का जवाब मुक्के से देना जानती हूं।..... बेटी को बेचकर मूंछों पर ताव देते लज्जा ही नहीं आती।"

"हाँ-हाँ, नहीं आती, जा कुछ करना है सो कर ले।"

"क्या कोई कर लेगा, नकटे की नाक कटी, चौदह अंगुल और बढ़ी।" मैना ने आगे बढ़ते हुए कहा –"जरा उस गाय पर तो दया करनी थी। तू बाप क्या है, पूरा कसाई है।" –मैना चली गई।

प्रतारणाओं से पीड़ित रेवतदान फुत्कारता घर की ओर बढ़ रहा था मटमैली संध्या गाँव पर छाने लग गई थी। ढोर जंगल से लौट रहे थे। रेवतदान ने ज्योंही घर में प्रवेश किया त्यों ही उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि आज चारों ओर मूर्दनी छा गई है। न गोरी रंभाती है और न रधिया चहकती है। वह भयभीत सा घर में घुसा। रधिया अपने बिस्तरे पर औंधे मुंह लेटी रो रो कर निढाल हुई जा रही थी। आँखें रोते रोते लाल पिल्लू० हो रही थीं। रेवतदान ने डरते डरते पुकारा –"रधिया !"

".....।" –रधिया रोती रही।

"सुनेगी नही क्या ?"

".....।" –इस बात पर रधिया ने रेवतदान की ओर देखा। उसकी दृष्टि नीचे झुक गई, जैसे वह कोई अपराध करके आ रहा हो। ग्लानि की रेखायें उसके चेहरे पर मूर्त्त हो उठी थीं। जैसे पापी के कदम मन्दिर की ओर बढ़ते हैं, ठीक उसी प्रकार रधिया की ओर रेवतदान के कदम उठे। उसने आकर रधिया के सिर पर हाथ फेर कर कहा –"तू समझती है बेटा, कि मैंने यह काम जान बूझ कर किया है ? मैं भी तो लाचार हूँ बेटा, यदि ना कह देता तो ठाकुर सा मुझे जान से मरवा कर तुम्हें अपनी बना लेंगे। पहाड़ से टकराने का किसमें साहस है ?"

०एक आँखों की आकार का लाल फल।

"मुझे अम्बल० देकर मार दो ।"

"जिसको अपना खून पिला कर पाला, उसे मैं कैसे मार सकता हूँ । फिर बेटा,होनी× को कौन मिटा सकता है ? कोई तो कोई तेरा हाथ पकड़ता ही, इससे तो अच्छा है कि तू ठाकुर सा की पर्दायतण बन कर रह, जीवन का सुख तो मिलेगा । नाई की बेटियों की तो यूं ही इज्जत नहीं है, यह तो तेरा भाग्य ही बहुत चोखा है कि ऐसा घराना मिल गया वर्ना.....।"

रधिया ने रेवतदान की ओर देखा । रेवतदान की आँखों में वह व्यथा नहीं थी जो किसी दुखी बाबा की आँखों में बेटी के सर्वनाश होते जीवन को देखकर होती है । इसलिये उसने आँखें बन्द करके रेवतदान से कहा –"तू खाकर सो जा, मुझे भूख नहीं है ।"

रेवतदान चला गया ।

रधिया को नींद नहीं आ रही थी । वह चाहती तो रात के अंधेरे में भाग भी सकती थी,लेकिन इससे उसके बाबा पर संकट आने की पूर्ण संभावना थी; क्योंकि जो मिनख अपने भाई के साथ कसाई का काम कर सकता है, वह दूसरों को तो जान से मार दे, कोई अचरज की बात नहीं है । तब वह धीरे धीरे उठकर कमरे से बाहर आई । सोचने लगी –"मैं कुँवे में कूद मरूँ, नहीं.....क्यों ?.....मरने पर, ओह ! कितना भयानक होगा कुँवा ?..... और यदि मैं इस पर भी बच गई तो गाँव में कितनी बदनामी होगी ?..... फिर ?.....तालाब.....।" वह आगे बढ़ी । रास्ते में लोटा पड़ा हुआ था, उसके ठोकर लगते ही रेवतदान जाग पड़ा । रेवतदान किसी चोर की शंका कर हठात् बाहर आया और अंधेरे में आकृति को पकड़कर हतप्रभ हो गया । हजारों बिच्छुओं की डंक मारने की पीड़ा से वह चीख उठा–"तू कलमुंही, कहाँ भाग रही थी ! राँड री, तेरी जान निकाल दूंगा ।" और रेवतदान ने तड़ातड़ दो-चार थप्पड़ मार दिये, रधिया के गाल पर ।

०अफीम, ×विधि ।

रधिया रोती रोती कहने लगी –"मैं भाग नहीं रही थी बाबा, तेरी सौगन्ध खाती हूँ, मैं भाग नहीं रही थी।"

"चुप रह छिनाल, तू तो कभी भी नाठ जाती अपने उस छैले के पास, पर मेरा भाग्य इतना भोदू० नहीं है। समझी, पाँव काट कर रख दूंगा।"

"....." –रधिया केवल रोती रही।

"सारे गाँव को सिर पर उठा लिया तो इसके मायने यह नहीं हुआ, कि रेवतदान को भी चुटकियों में खेला लोगी। सपने में भी यह ध्यान मत रखना कि मैं इतना उल्लू हूँ। मर भीतर।" –रेवतदान ने उसे धक्का देकर दरवाजा बन्द कर दिया।

रधिया की सिसकियाँ निरन्तर आ रही थीं।

बाहर रेवतदान पहरा दे रहा था।

१५

दो दिन बीत गये।

मोहन विकलता से रधिया की प्रतीक्षा कर रहा था। नारायण सिंह भी असमंजस में पड़ा हुआ था। ऐसा तो आजतक नहीं हुआ कि रधिया दो दिन तक न आये और न गोरी के हाथ समाचार भी भिजवाये। मोहन ने अन्त में उकता कर चिड़चिड़े स्वर में कहा –"नहीं आती है तो भाड़ में जाये, अब की तो मैं साफ ही कह दूंगा कि तेरी जबान क्या है, पानी का नाला, जिसका कोई मोल-तोल नहीं।" –इतना कहकर वहअपनी

०साधारण।

बंशी को निकाल कर बजाने लगा पर आज वंशी की धुन में भी वह आनंद नहीं था। तान पूर्णरूपेण जम ही नहीं रही थी। –"क्या बात है ?" –वह अपने आप से यह प्रश्न कर बैठा। कोई उत्तर उसके मन ने नहीं दिया। उसे इतना अवश्य अनुभव हुआ कि रधिया के बिना उसका चित्त ठिकाने नहीं रहता इसलिये वंशी की तान जम नहीं रही है।

लाचार वह अपना उखड़ा उखड़ा-सा मन लिये नारायण सिंह के पास आया। नारायण सिंह हिरन को काट कर उसके माँस में से हड्डियों के टुकड़े निकाल रहा था। मोहन को देखते ही वह बोला –"क्यों बेटा, आज इतने सुस्त क्यों हो ?"

"यूं ही।"

"यह नहीं हो सकता, जरूर कोई बात है ?"

"नही बाबा, ऐसी तो कोई बात नहीं है।"

"हम से छिपा रहा है, रधिया जो दो दिन से नहीं आ रही है।.... मोहन ! अचरज तो मुझे भी है इस बात का।"

"अचरज की तो बात ही है, गोगी के साथ कोई सन्देशा-वन्देशा भी तो नहीं है।"

"तो तू एक काम कर !"

"क्या ?"

"गाँव जाकर पता लगा कर आ।"

"बाबा !" विस्फारित नेत्र हो गये मोहन के। वह घबड़ा उठा। जैसे उसकी आँखें पूछ रही है–'यह आप कह रहे है कि मै गाँव जाकर वहाँ पता लगा कर आऊँ ?'

"साहस से काम लो मोहन। रधिया की आदत तू नहीं जानता, ...कहीं ताव० आ गया होगा, कहीं उछल-कूद में गिरकर हाथ-पाँव तुड़वा बैठी होगी,..... जाकर पता तो लगा कर आ।"

०बुखार।

"अच्छा बाबा।" –कहकर मोहन उस गाँव की ओर बढ़ा। रास्ते में वह सोच रहा था कि यदि कोई उसे पूछेगा तो वह झूठ ही बता देगा कि वह फँला गाँव से आया है। उसका नाम राम है, जात का नाई है आदि आदि।

एकाएक उसको किसी कुत्ते की दर्दीली आवाज सुनाई पड़ी। वह उस ओर बढ़ा। देखा, तो सिर से पाँव तक काँप उठा। बैलगाड़ी का एक चक्का उस कुत्ते की पिछली टाँगों पर से निकल चुका था, जिससे वह कुत्ता छटपटा रहा था। साँप की भाँति रेंग रहा है। मोहन उसे व्यथा भरी दृष्टि से देखता रहा। देखते देखते वह न जाने कौन से विचारों में खो गया कि उसके चेहरे पर भय की रेखायें दौड़ गईं। उसने अपनी आँखें बंद कर ली तो उसे महसूस हुआ कि रधिया की टाँगे भी इसी प्रकार टूट गई हैं। वह उसकी पीड़ा में धरती आकाश एक कर रही है। बिल-बिला रही। –और मोहन के कदम हवा से बातें करने लगे।

थोड़ी ही देर में वह उस गाँव में प्रवेश कर गया। उस समय संध्या होने लग गई थी। इसलिये गाँवों की गलियों में चहल पहल थी। मोहन ने दो मोटचारों को देखा, लेकिन उसकी हिम्मत नहीं हुई–उन्हें उनसे यह पूछने की कि रेवतदान का मकान कहाँ है ? उसे संदेह हो रहा था कि यदि वह उनसे रेवतदान का मकान का पता पूछेगा तो उन्हें यही सन्देह होगा कि यह अवश्य ही वही लड़का है जो रधिया पर डोरे डालता है, उससे प्रीत करता है।

सहसा कोई युवक मोहन को घूरता हुआ निकला। मोहन के हृदय में भय जाग उठा। उसे महसूस हुआ कि यह लड़का उसे कुछ-कुछ पह-चानने लगा है। अतः तुरन्त उसने तेज कदम उठाने शुरू किये। वह गाँव की सूनसान गली में घुस पड़ा। एक ठंडी आह छोड़ कर वह अकड़ कर चलने लगा। सामने उसे एक वृद्ध लकड़ी के सहारे आता हुआ दिखाई दिया। उसने उससे साहस करके कहा –"जरा सुनिये तो !"

"कह रे ?" –भारी स्वर ने पूछा।

"रेवतदान नाई का मकान कौन सा है ?"

"मकान तो वही डेरे के पीछे हैं लेकिन अभी उसकी आँखें चंग चढ़ी हुई हैं।" –उस वृद्ध ने व्यंग किया।

"मैं समझा नहीं ?" –मोहन ने जिज्ञासा की।

"तू क्या समझेगा ? अरे समझने के लिये भेजा चाहिये भेजा।" –वृद्ध के शब्द मोहन के लिये पहेलियाँ बन रहे थे। वह ललाट पर सलवटें डाल कर स्थिर दृष्टि से उस वृद्धि को देखने लगा।

"मैंने कह दिया कि तू नहीं समझ सकता, यह भाग्य के फेर हैं पर तू कहाँ से आया है।?"

"मैं.....गाँव से, उसका जाति भाई हूँ।"

"पर बेटा, आजकल उसकी माया अपरम्पार है। ठाकुर सा ने उसकी बेटी रधिया को जबसे अपनी पर्दायतण बनाया है, तबसे उस नाई के बच्चे का मिजाज़ ठिकाने पर नहीं है। उस्तरा तलवार और राई पर्वत सुझाई देता है।" –वृद्ध का स्वर तीव्र हो गया। आँखों में रोष झलक उठा –"तू ही बता, अपने जाति का काम नहीं करेगा तो खायेगा क्या ? आज इस नाई के बच्चे ने अपना काम छोड़ा है, और कल ये भंगी भी कहेंगे कि हम टट्टी (पाखाना) नहीं उठायेंगे तो क्या टट्टी ब्राहमण उठायेंगे ? कर्म फूटे को यह मालूम नहीं कि ये ठाकुर किसी के नहीं होते, बेटी चोखी है तो तुम्हें पूछने लगा और जब....छि....छि....छि।" वृद्ध घृणा से आँखें तरेर कर चलता बना।

मोहन हत्प्रभ सा हो गया। उसके मन ने चाहा भी जाकर वृद्ध से पूछे कि रधिया ने यह क्यों स्वीकार कर लिया, वह मेरे पास भाग क्यों नहीं आई ? उसने ,.....नहीं,.....यदि गाँव वालों को यह पता लग जायेगा कि वह उसके बैरी गाँव का रहने वाला है तो उसकी बोटी बोटी उड़ा देंगे और यदि यहाँ के ठाकुर को यह पता लग गया कि यह मोटचार वही मोहन है तो वे उसे जिन्दा जला देंगे। मोहन सिर से पाँव तक काँप

उठा। ललाट पर जिन्दा जलाने के भय के कारण पसीना निकल आया था, उसे उसने तुरन्त पोंछा। पोंछकर चोर की भाँति डग भरता हुआ चलने लगा।

अन्धेरा छा गया।

मोहन के मस्तिष्क में जोर का तूफान उठ रहा था। रधिया के दुख, संताप, ठाकुर जसवन्त सिंहजी का भय, भय से उत्पन्न दंड की विभीषिका जिन्दा जला डालना। –उसके पाँव लड़खड़ाने लगे।

तभी उसे एक व्यक्ति हाथ में आग का पलीता लिये आता हुआ दिखाई पड़ा। उसे शंका हुई कि वह आदमी उसे ही जलाने आ रहा है अतः वह द्रुत गति से चलने लगा। उसे द्रुत गति से चलते देख कर उस व्यक्ति ने पूछा –"कौन है ?"

"मिला नहीं क्या ?"

"मिल लिया, मिल लिया।" कहता कहता मोहन उससे दूर निकल गया।

बस्ती समाप्त हो गई थी।

जंगल का अंधेरा गहरा काला होकर पृथ्वी पर छा गया था और मोहन आँधी की भाँति तेज कदम उठाता गोचर भूमि की ओर बढ़ रहा था।

१६

रात हो गई थी।

ठाकुर सा ने खुली छत से आकाश की ओर दृष्टि डाली तो उन्हें प्रतीत

हुआ कि जैसे आज प्रकृति विशेष सजधज के साथ अपना कौशल दिखा रही है। वे कुछ देरतक क्षितिज के चारों कोनों को निहारते, मन ही मन अपनी सफलता पर फूले समाते अपने कमरे में चले गये।

उनके चले जाने के उपरान्त ठकुराइन ने आकर आकाश को निहारा। उसे जान पड़ा आज प्रकृति निश्चिन्त है, अवरोद्ध विहीन है। आज वह....?

वह अपने कमरे में आकर सोलह श्रृंगार करने लगी। ठाकुर सा एक बार उसके कमरे के आगे से गुजरे, ठकुराइन को श्रृंगार करते देख, उनका माथा भी ठनका पर उनका साहस नहीं हुआ कि वे जाकर उससे पूछे कि आज किस खुशखबरी पर आप बनठन रही हैं? सन्तोष के लिये उन्होंने अपने मन से कहा –"रधिया को पर्दायतण बनाने में उनकी स्वीकृति तो हम ले ही चुके थे। फिर उन्हें दुख किस बात का हो सकता है?"

ठाकुर सा चले गये। ठकुराइन ने सोलह श्रृंगार करके एक बार दर्पण से अपने रूप को देखा। देखने के साथ उनके मन में विचार उठा– "एक भी ठिकरी खाली है?"०

और वह मौचे पर बैठकर प्रतीक्षा करने लगी।

"खम्मा ठकुराइन सा!"–लधिये का स्वर ठकुराइन के कानों में पड़ा।

"लधिया!" –हठात् उठकर ठकुराइन उससे आलिंगन करने को तत्पर हुई। लधिया पीछे हट गया। ठकुराइन का चेहरा तमतमा उठा। दो कौड़ी के गोले द्वारा की गई यह उपेक्षा उसको तमाचे सी प्रतीत हुई। वह क्रोध से दाँतों द्वारा होठों को काटती हुई बोली –"लधिया!"–इस लघु शब्द में काम-पीड़ित उपेक्षित युवती का क्रोध और वेदना दोनों थे।

०कोई भी कोर कसर है?

"हाँ ठकुराइन सा !" –लधिया धरती में दृष्टि गड़ाये स्थिर खड़ा रहा ।

"तू दूर क्यों हुआ ?"

"ठकुराइन सा !" –लधिया की व्यथित पलकें ठकुराइन के चेहरे पर जम गईं । भर्राये स्वर में बोला –"मुझ से यह पाप रोज-रोज नहीं हो सकता !"

"कैसा पाप ?"

"ठकुराइन सा आप क्षत्राणी हैं, ऊँचे घर की हैं, ऊँची इज्ज़त आबरू वाली हैं, आप अपने धणी को धोखा देकर ऐसा नीच काम क्यों करती हैं ?" –लधिये के स्वर में क्रमशः झुंझलाहट आती गई ।

"ओह ! तो आज तू भी मुझे उपदेश देने लगा ।.....लधिया ! तेरे ठाकुर सा को कुछ नहीं चाहिये, उनको चाहिये केवल भोग के लिये नित्य नई छोरियाँ । रैयत के रगतू० से वे अपने ऐश के साधन जुटाते हैं ।.... तू जानता ही होगा, आज ही उन्होंने रधिया को.....। क्यों ? क्या मैं उससे कम सुन्दर हूँ ? मुझमें कोई कोर कसर है ? या मैं लूली-लंगड़ी हूँ, या कानी-अंधी ?" –कहती कहती वत्सला की आँखों में आँसू छलछला आये, हिचकियाँ पर हिचकियाँ बंध गईं । विवशता जन्य नारी का पाप परिस्थिति वश यथार्थ बन गया । लधिया अपना मुख दूसरी ओर घुमाता हुआ बोला –"मैं कुछ नहीं जानता, पर इतना अवश्य कहता हूँ कि चाहे आज आप मुझे कितना ही डरा लें, धमका लें, तहखाने में बन्द करा दें, पर अब मैं यह पाप नहीं करूँगा, मेरी आत्मा बड़ी दुख पाती है, मुझे बहुत डर लगता है ।" –लधिया का तन काँप रहा था ।

ठकुराइन उसके पास आती हुई अंशतः आर्द स्वर में बोली–"पर तू एक बात बता, मैं जो कर रही हूँ, क्या वह जानबूझ कर कर रही हूँ ?"

०रक्त

"मुझे नहीं पता, पर मैं इतना जानता हूं कि आप जो कर रही हैं, वह अच्छा नहीं कर रही हैं।" भगवान के सामने आप क्या मुंह दिखायेंगी ?"

"कुछ नहीं, नरक तो मिलेगा ही....?"

"ठकुराइन सा !" —लधिये ने झपटकर उनके पाँव पकड़ लिए —"मुझे आप छोड़ दीजिये, आपके यहाँ कितने गोले हैं, एक-एक से तगड़े, उनमें से किसी को पटा लीजिये, पर मुझे छोड़ दीजिये, मुझे इस काम से घृणा है।"

"उठ, और जाकर सो जा।" —लधिया पलक झेंपते चला गया।

वत्सला विस्तरे पर पड़कर फफक पड़ी।

रोते रोते उसकी आँखों के नीचे का तकिया गीला हो गया। आँखों के कोयें लाल पड़ गये। गालों पर जलन-सी होने लगी।

वह उठा।

उसने अपने अंग के जेवर उतारे और खिड़की में खड़ी होकर शून्याकाश की ओर ताकने लगी।

आकाश नीला और निर्मल था।

आकाश गंगा अपनी संपूर्ण कलाओं के साथ चमक रही थी।

पवन के हिलोरे रुके हुए थे, इसलिये ठकुराइन सा की तबियत कुछ घुट रही थी।

उसने सारे गाँव के घरों पर दृष्टिपात करते-करते सोचा —"सारा जगत० सुख नींद सो रहा है और मैं आधी आधी रात तक जाग रही हूँ।"

और ठकुराइन सीधी ठाकुर सा के कमरे की ओर चल पड़ी।

कमरा शून्य था।

ठकुराइन ने कमरे में प्रवेश किया। इधर-उधर ताका और फिर कसूम्बा पीने लगी।

---

० गाँव से ही तात्पर्य।

और ठाकुर सा ?

रधिया के कमरे के आगे चहलकदमी कर रहे थे। बार-बार वे आधा किवाड़ खोलते पर उनकी इच्छा और नैतिकता उन्हें यह साहस नहीं बंधा पा रही थी कि वे भीतर घुस जायें।

रात ढल रही थी।

ठाकुर सा ने अपने ललाट पर उभरी पसीने की बूंदों को पोंछा।

कौन सी झिझक, कौन सी बाधा ऐसी थी, जो उस वीर राजपूत को एक अबला के सामने जाने का साहस नहीं बंधा रही थी ?

सोचते थे –"रधिया बहुत ही मुंहफट है, सारे गाँव को सिर पर उठा रखा है, कहीं....नहीं, नहीं, हम कितनी ही छोरियों को रास्ते पर ला चुके हैं।" –यह सोचकर ठाकुर सा कमरे में घुसे।

रधिया बिस्तरे पर बैठी थी।

उसे नींद नहीं आ रही थी। उसने पदचाप सुनकर, चौंक कर प्रणाम किया –"घणी घणी खम्मा माई-बाप !"

"रधिया !" ठाकुर सा चीख उठे –"हम तेरे माई-बाप नहीं, अन्न-दाता हैं, घरवाले हैं।"

"भूल के लिये माफी चाहती हूँ।" –भोलापन से रधिया ने ठाकुर सा की ओर देखा। ठाकुर सा उस भोलेपन को भय समझकर आहत हो उठे। पूछ बैठे –"तू हमें ऐसे क्यों घूर रही है ?"

"कैसे ?"

"ऐसे !" –ठाकुर सा ने आँखें फाड़कर, उन्हें स्थिर करते हुए कहा।

"आपके चेहरे को !"

हमारे चेहरे को....?" – ठाकुर सा झेंप गये। तुरन्त अपनी हथेलियों को मल कर चेहरे पर फेरा।

"हाँ, आपकी इन मूंछों को ?" – रधिया ने धरती पर दृष्टि को गड़ाते हुए धीरे से कहा।

"मूंछों को।" –ठाकुर सा के दोनों हाथ मूछों पर चले गये।

रधिया इस बार बिलकुल मौन रही।

ठाकुर सा उसके समीप आये। उसके साथ एक पलंग पर बैठे। अपने हाथों को उसकी ओर बढ़ाया। वासना आँखों में चमकी। होठों पर जिह्वा को फेरा। रधिया उनसे दूर हो गई।

"रधिया ! आज तू खाली रधिया नहीं, हमारी पर्दायतण है। इधर आओ, हम कहते हैं, इधर आओ।"

रधिया उनके सामने आकर भय से, विस्फारित नेत्रों से उन्हें एकटक देखने लगी।

ठाकुर सा भी उसे उसी प्रकार देखते रहे। देखते देखते तड़प उठे– "तू मुझे फिर यूं घूरने लगी ?.....आँखें नीची कर ले।"

रधिया ने आँखें नीची कर लीं।

ठाकुर सा झुंझला उठे –"हम कहते हैं कि हमारे पास आओ।"

रधिया उनके पास आ गई।

ठाकुर सा ने उसे छुआ। रधिया ने उन्हें पुनः उसी दृष्टि से निहारा ठाकुर सा जल उठे –"फिर तू ऐसे देखने लगी ?"

रधिया ने पुनः आँखें नीची कर ली।

ठाकुर सा हठात् कमरे से बाहर आये। अपने निजी कमरे में आकर कसूम्बा पिया। अपने आपको उसके नशे में विलीन किया। तब वे फिर रधिया के कमरे में आये।

रधिया बिस्तरे पर सोयी हुई थी। ठाकुर सा को देखकर वह संभल कर बैठ गई।

ठाकुर सा ने झमते हुए कहा –"अब आओ हमारे पास !"

रधिया काँपती हुई उनके समीप गई।

"जानती हो रधिया, हम जिस पर अपनी दया-दृष्टि कर देते हैं, उसको निहाल कर देते हैं, जमींदार हैं, तुम सबके अन्नदाता हैं, हम चाहें

तो तुम लोगों के भाग्य बना-बिगाड़ सकते हैं। तू नहीं जानती मग्गी को,.....अरी वही छोटू की बेटी, जब तहखाने में पहुंचाई गई तो बड़ा नखरा करती थी, लेकिन हम ठहरे राजपूत, वह हाथ बताया कि बिचारी के प्राण पखेरु उड़ गये,.....मर गई।"

"मर गई ?" –रधिया के मुंह से हठात् निकला।

"पर तुम्हें नहीं मारूँगा, तू हमारी अपनी पर्दायतण है। पर रधिया यह नशा बहुत खराब है, कभी कभी इसकी झोंक में यह भी पता नहीं लगता कि हम क्या कर रहे हैं ?..... पर तू डर नहीं, हालाँकि हमने कमूम्बा बहुत पी लिया है, पर तुम्हें घबड़ाना नहीं चाहिये।" –इतना कहकर ठाकुर सा रधिया की ओर बढ़े।

शान्त वातावरण में जीवन का मौन क्रन्दन गूंज पड़ा।

दीया ठाकुर सा की भुजायें फैलते ही काँप गया।

रधिया ने भयभीत हिरणी की तरह उनकी ओर देखकर अपने दोनों हाथों से अपने मुंह को छिपा लिया।

ठाकुर सा जोर से अट्टहास कर बैठे –"ओह समझा ! तुम्हें लाज आती है, ठहरो दीया बुझा देता हूँ। अन्धेरा होने पर लाज नहीं आयेगी।"

ठाकुर सा ने लपक कर दीये को बुझा दिया।

मानवता और नैतिकता चींख मार कर पवन के वेग में विलीन हो गई।

दीया बुझकर अभी जला नहीं था। रात आधी से अधिक गुजर चुकी थी।

एकाएक बाहर से किसी की भयानक आवाज आई –"जसवन्त सिंह !"

"कौन है कमीना ?" – ठाकुर सा चौंक कर दरवाजे की ओर बढ़े और किवाड़ खोलने के पहले उन्होंने पुनः दीये को जलाया।

"मैं !" – आगन्तुक ने भीतर प्रवेश करते हुए कहा।

"तू....नहीं, नहीं, आप नारायण सिंह जी, भाई सा !"–ठाकुर सा का सारा नशा चुटकी बजाते उतर गया।

रधिया दौड़कर नारायण सिंह के सीने से चिपक गई –"बाबा !... बाबा!!...मुझे बचाओ...।" –रधिया के स्वर में घायल की पीर थी।

"घबड़ा न बिटिया जा, तू दूसरे कमरे में चली जा, देख किसी से कुछ कहना मत।" – रधिया अर्थभरी दृष्टि से देखती चली गई। उसको जाते देखकर ठाकुर सा भी बाहर निकलने को उद्यत हुए। उन्हें रोकते हुए नारायण सिंह बोला–"आप कहाँ चले ठाकुर सा ? गौ, ब्राह्मण, अबला के रक्षक, क्षत्रीकुल के दीपक आप कहाँ चले ?"

"हम कहते हैं, हमें जाने दीजिये वर्ना अभी हम....?" –ठाकुर सा के स्वर को नारायण सिंह ने पूर्ण किया–"डेरे वालों को पुकारते हैं,क्यों ठीक है न,मेरा कहना ? लेकिन मैं पूछता हूँ, डेरे वाले मेरा क्या कर लेंगे ?"

"आप,.....आप पागल हैं, हम ....।"

"चुप रहिये।" – कहकर नारायण सिंह ने तलवार संभाली –"यह तलवार वर्षों से आपके खून की प्यासी है ठाकुर सा !"

"पर आप यहाँ क्यों आये हैं, आपको रुपया चहिये ?"

"नहीं।"

"यह रधिया चहिये ?"

"नहीं।"

"यह डेरा ?"

"नहीं।"

"फिर क्या चहिये ?"

"आप।"

"हम ?"

"हाँ आप, वह भाई जिसने अपनी रजपूताई को कलंकित करके अपने भाई को तरसा-तरसा कर दुख दिया।"

"मतलब ?" – ठाकुर सा एकाएक संभले और अकड़ कर खड़े हो गये। जैसे उन्हें एकाएक साहस आ गया है कि मरना है तो शेर की मौत क्यों नहीं मरा जाये।

"आप राजपूत हैं ?"

"हाँ।"

"आप अपनी आन-शान की रक्षा जान देकर भी करते हैं ?"

"हाँ।"

"जरा सोच कर बताइये कि आपने अपनी पहलेवाली ठकुराइन की बेटी को जान से मारा था ?"

"हाँ, तलवार से दो टुकड़े किये थे।" हकलाते हुए बोले ठाकुर सा।

"झूठ।" –नारायण सिंह गर्ज पड़ा।

"कौन कहता है ?"

"मैं।"

"क्या प्रमाण है ?"

"एक ही नहीं, कई एक !.....दुष्ट ! भगवान ने तुम्हें अपने पापों की खूब ही सजा दी है। तू ने पाप का जो घड़ा भरा था वह फूट रहा है। तू ने वह पाप किया है, जिसे सात जन्म में भी कोई माफ नहीं करेगा।" –कहते-कहते नारायण सिंह के स्वर में घृणा भर आई। चेहरे पर श्वेदकण उभर आये। सारा शरीर काँपने लगा।

"कौन सा पाप ?"

"सुन, कमीने यह रधिया कौन है ?"

"रधिया !" –ठाकुर सा काँप उठे।

"हाँ, यह रधिया, सारे गाँव का जीवन, उसकी खुशी, यह रधिया कौन है ?"

"....।" –ठाकुर सा आँखें फार-फार कर नारायण सिंह को देखते रहे।

मैं बताऊँ ?....."तेरी बेटी ।"

"मेरी बेटी ?" चींख उठे ठाकुर सा–"मेरी बेटी, नारायण सिंह ! जबान को संभालो वर्ना.....।"

"राजपूती खून में उबाल आ जायेगा। ठाकुर सा ! उबाल आने में क्या रखा है ? धैर्य से सोचिये, नहीं तो यह पाप इन दीवारों से निकल कर सारे गाँव में फैल जायेगा और.....।"

"लेकिन इसका प्रमाण ?" –पराजित सेनानी की भाँति ठाकुर सा का स्वर टूट गया ।

"रेवतदान को बुलाओ !"

ठाकुर सा ने जोर से पुकारा –"नत्थू ! अरे ओ नत्थू !"

"हुक्म अन्नदाता !" – नत्थू ने नीचे से उत्तर दिया ।

"रेवतदान को बुला ला ।" –ठाकुर सा ने पुनः नारायणसिंह की ओर ताका। नारायणसिंह जी ने कहा "मुझे पागल बनाकर समझ लिया था कि अब मैं निश्चिंत हो गया हूं। ये दो सौ गांव और यह राजशाही ठाट-बाट सब मेरे हैं जितना चाहूंगा मौज करूंगा, लेकिन साईं के सौ हाथ होते हैं, तूने जैसी करनी की वैसा ही फल पाया, मेरा नाश करके तू भी चैन की वंशी नहीं बजा सका।....और कैसे बजा सकता है ?...भगवान के घर में देर जरूर है पर अन्धेर नहीं ।" नारायणसिंह ने आगे कहा–"जसवन्त सिंह ! पिंजरे में मुझे कितना कष्ट था ? मैं अबोध बालक की भांति हरेक गांववाले के सामने बिलबिलाता रहता था, अपनी मुक्ति के लिए उनसे हाथ फैलाकर विनती करता रहता था पर कोई भी माई का लाल तेरे भय और आतंक से मुझे मुक्त करने को तैयार नहीं था।..." इतना कह नारायणसिंह की आंखें दीवार पर जम गयीं। ठाकुर सा निरीह मूक पशु की भांति व्यथित दृष्टि से अपने अग्रज को देखते रहे ।

नारायण सिंह बोला–कितनी घिनौनी जिन्दगी थी वह उस छोटे से पिंजरे में मैं तोते की भांति कैद ! वहीं खाना,वहीं टट्टी करना, ओह !...

इसपर गांववालों के कहकहे तालियां और फब्तियां। सचमुच मैं यदि कुछ दिन उस पिंजरे में और कैद रहता तो मैं अवश्य पागल हो जाता, लेकिन उस त्रिलोकीनाथ को मुझ पर दया आ गई और एकदिन मोहन बहुत दूर से गुजर रहा था। उसने यह पिंजरा देखा तो उसकी जिज्ञासा बढ़ी। वह डरता डरता यहां आया। मेरी दशा पर उसे दया आगई, उसकी करुणा जाग उठी और उसने मुझे रात के गहरे अन्धेरे में मुक्त कर दिया।

इतना कहकर नारायण सिंह ने पश्चाताप की आह छोड़ी और अपनी पैनी दृष्टि से ठाकुर सा को घूरते हुए तीव्र स्वर में बोला–"उसने मेरे शरीर को जरूर मुक्त कर दिया पर मेरे हाथ पांवों को बांधकर।"

"मुक्त होने के पहले उसने मुझसे एक प्रतिज्ञा कराई–" नारायण-सिंह पुनः अश्वस्त होता हुआ धीमे स्वर में बोला–"मोहन ने कहा–ठाकुर सा मैं आपको मुक्त कर सकता हूं पर एक शर्त पर... ।"

"वह क्या ?"

"कि आप किसी भी गांववाले पर अपना हाथ नहीं उठायेंगे ?"

"मैं कुछ देर तक मौन रहा। पर मरता क्या नहीं करता, उसे वचन देकर अपनी मुक्ति कराली।"

"मुक्त होकर मैं गोचर भूमि में चला गया पर मेरा मन सदा तेरे से बदला लेने में लगा रहता था। कई बार तुम्हें टुकड़े टुकड़े करने के लिए रात के काजल से काले अंधेरे में डेरे की ओर रवाने भी हुआ था,पर फिर मोहन को दिये वचन याद आ गये और मेरे पांव पीछे पड़ गये।"

लेकिन उस रात–

ऐसा अंधेरा था कि हाथ से हाथ नहीं सूझता था। मन्द से मन्द ध्वनि भी कानों में पड़ जाती थी। नारायणसिंह के हृदय की प्रतिशोध की भावना का शोषण करता था पर वह जितना शोषण करता जाता था,वह भावना उतनी ही प्रबल हुई जा रही थी। रह-रह पिछली बातें, अपमान प्रताड़नायें, चंदा, पिंजरा उसके मस्तिष्क के संघर्ष के तत्व बने हुए थे।

अन्त में वह उठा। झोपड़ी में से तलवार ली और डेरे की ओर चल पड़ा।

रात का अंधेरा भूत-सा भयानक था।

उस भयानकता की तनिक भी चिन्ता किये बिना नारायण सिंह डेरे की ओर बढ़ रहा था।

अकूड़ी के समीप उसे किसी की आकृति आती हुई दिखायी पड़ी। उसे देखते ही नारायण सिंह को भूत का बहम हुआ। अन्धविश्वास के आधार पर जैसा कि भूत को पहले पुकार लेने पर उसकी शक्ति आधी हो जाती थी है, नारायण सिंह ने उसे पुकारना चाहा कि बच्ची का क्रन्दन सुनाई पड़ा। नारायण सिंह बच्ची का क्रन्दन सुनते ही क्या मामला है, तुरन्त समझ गया। वह उस निर्दयी आत्मा के अमानवीय कृत्य को फटी आंखों से निहारने लगा।

आकृति ने उस बच्ची को हाथ से ऊपर उठाकर फेंकते हुए कहा–"तू बड़ी होकर हमारी गर्दन को झुकाये, इसके पहले ही तुम्हें समाप्त किये देता हूं।"

नारायण सिंह ने आवाज को पहचान ली।

मन ही मन कह उठा–"जसवंत सिंह !"

और अपनी शंका के निवारण हेतु नारायण सिंह ठाकुर सा का पीछा करने लगा। जब ठाकुर सा ने डेरे में प्रवेश कर लिया तब नारायणसिंह को बच्ची का ख्याल आया। वे झपट कर अकूड़ी पर आये तो देखा–एक व्यक्ति उस बच्ची को लिए अश्लील गालियां दे रहा है–"....साला कौन होगा जो मानखे०ने डूबाने की बात गांवमें करता है।...यदि जोवन में इतनी ही... है तो हाट में जाकर क्यों नहीं बैठ जाती ?...हे प्रभु ! इस कलियुग में तूने ऐसी पत्थर हिये की लुगाइयां पैदा करदी है जो अपने कलेजे के टुकड़ों को

०मानवता।

इस तरह फेंक जाती हैं।... रो मत बच्ची, रो मत,...वाह भगवान ! यह तेरी लीला भी तीन लोक से न्यारी है, कैसे कैसे खेल रचाता है, और क्यों रचाता है,तू ही जानता है ?...चुप हो जा बेटा चुप हो जा।"—वह व्यक्ति उस बच्ची को लेकर अपने घर की ओर चला।

नारायण सिंह उसका पीछा कर रहा था।

वह अपने घर में घुसा। नारायण सिंह ने मन ही मन कहा—"यह तो रेवतदान नाई का घर है।"

वह रेवतदान के पीछे पीछे उसके घर में घुसा।

रेवतदान ने घृणा से बेसुर में कहा—"मालजादी० ही कोई होगी, जो इस भांति लड़की को फेंक कर चली गयी।"

नाई ने भीतर से ही गर्जकर कहा—"घर में घुसते ही आवल कावल+ बकने लगा। अनकमाऊ× आता है झगड़ता और कमाऊ आता है डरता।"

"अरी मैं तुम्हें थोड़े ही कहता हूं, मैं तो....।" नाइन रेवतदान के हाथ में लड़की को देखकर हतप्रभ हो गई तथा रेवतदान नाइन की इस विचित्र मुद्रा को देखकर चकित रह गया।

"यह कौन है ?"

"लड़की"। रेवतदान झट बोला।

"यह तो मुझे भी सूझता है, पर तू कहां से उठा लाया है ?"

"अकूड़ी से।"

"तेरा सिर तो नहीं फिर गया है, अकूड़ी पर कूड़ा मिलेगा या बच्ची ?"

"यह मैं नहीं जानता पर जो कहता हूं, वह सोलहआने सच कहता हूं।"

"तो....?"

०व्यभिचारिणी, +अंटसंट, ×बेकार।

सुन ! तू समझती तो नहीं, किसी का पाप होगा या किसी छत्री के घर यह जन्मी होगी, सो वह फेंक गया होगा...कहीं अपने ठाकुर सा की तो...! अच्छा ! कल मैं उन्हें पूछूंगा।"—रेवतदान ने नयनों को गंभीरता से मटका कर कहा।

नाइन उसके इन शब्दों को सुनकर कुछ देरतक मौन रही। उसकी स्थिर पलकों में विचारों का द्वन्द स्पष्ट झलक पड़ा था, ममता की ज्योति जलने लगी और नारी की पवित्र अभिलाषा जैसे बोल उठी हो—मां !

"मां।" उस बांझ नाइन के कानों में यह शब्द प्रभु के नाम की भांति प्रविष्ठ करके उसके अन्तराल पर गहरा प्रभाव छोड़ गया। वह कुछ देर तक अनिमेष दृष्टि से बिना किसी को विशेष अपना केन्द्र बनाये शून्य की ओर ताकती रही, फिर हड़बड़ाकर कह उठी—"नहीं, नहीं आप ठाकुर सा को नहीं पूछिए, इसे मैं पाल० लूंगी।"

"तूं पाल लेगी ?" रेवतदान ने विस्मय मे पूछा।

"हां, मैं पाल लूंगी, तू ही सोच, मेरे भी तो छोरा-छोरी नहीं है, मुझे भी तो कोई मां कहनेवाला चाहिए,.....सच कहती हूं—बिना टावर+ यह आंगन मसान-सा लगता है।"—नाइन के स्वर में विनय थीं।

"यह मैं खूब समझता हूं, पर भलीमानस जरा यह तो विचार कि आखिर यह किस जात-पात की है, कहीं...।"

"हमलोग फिर कौन सी बड़ी जात के हैं ?" नाइन ने स्वर को लम्बा करके व्यंग कसा।

"फिर....?"

"हां, देखो कल से यदि तुम्हें कोई इस लड़की के बारे में पूछे तो कह देना, कि मेरे किसी मित्र की बेटी है।"—नाइन ने रेवतदान को परामर्श दिया।

०पालन +बच्चा।

"हां-हां ।" कुछ खोया खोया सा वह बोला ।

"हां-हां से नहीं चलेगी,कही गड़बड़ घोटाला न कर बैठना....क्योंकि मैं भलीभांति जानती हू कि तेरे मे एक आदत बहुत ही खराब है?"—नाइन इतना कहकर चुप हो गई । रेवतदान उसकी ओर जिज्ञासा भरी दृष्टि से देखने लगा जैसे वह कह रहा हं—"वह भी बता दे भाग्यवान ।"

और नाइन कह ही उठी—"वह है, जैसा मुंह देखेगा, वैसी बात कर देगा ।"

"कर दिया रे, कर दिया ।"— रेवतदान उपेक्षा से बोला—"बात तो तेरे जैसी लुगाइयों के पेट में ही नहीं पचती है ।"

"देखना है,कौन कितना पचाता है ।"—कहकर नाइन ने बच्ची को अपने गले से लगा लिया । बच्ची रोने लगी । उसको पुचकारती हुई नाइन मधुर स्वर में बोली—"रो मत मुन्नी रो मत ।" फिर उस बच्ची को रेवतदान के हाथ सौंपती हुई बोली—"संभाल ले तो ।"

रेवतदान बच्ची को राजी करने लगा ।

नाइन भीतर जाकर एक कटोरी में दूध ले आई और रूई के फौवे से बच्ची को दूध पिलाने लगी । बच्ची दूध पीकर सो गई । औ...।"

"इसके बाद ?" ठाकुर सा ने आंखें फाड़कर पूछा ।

"मैं....।"—नारायण सिंह अपने वाक्य को पूरा करता कि इसके पहले ही रेवतदान ने आकर कहा —"घणी घणी खम्भा अन्नदाता ने ।"

"रेवतदान !" — नारायण सिंह ने कहा ।

"कौन, आप... आप बड़े ठाकुर सा !"— रेवतदान नारायण सिंह को देखकर कांपने लगा ।

ठाकुर सा ने अपने सिर को अपने दोनों हाथों से पकड़ते हुए पूछा—"रेवतदान ! यह रधिया किसकी बेटी है ?...सच सच बताना ।"

"यह बेटी ! माई बाप मेरी ।"—रेवतदान ने डरते हुए रुकते-रुकते कहा ।

"रेवतदान तेरे पाप का घड़ा अब भर चुका है ।"– नारायण सिंह उसकी ओर बढ़ते हुए बोले–"तू इसे कहां से उठाकर लाया था ?"

"मैं... ।"

"बता नहीं तो इस तलवार से तेरे टुकड़े टुकड़े कर दूंगा ।"

"मैं.... मैं.... अकूड़ी से ।"

"इसने क्या पहन रखा था ?"– ठाकुर सा ने पूछा ।

"लाल कपड़ा ।"

"लाल कपड़ा ।"–ठाकुर सा के मुंह से निकला । निकल कर वह सारे डेरे में प्रति ध्वनि के रूप में गूंज पड़ा ।

"अब कहिए ठाकुर सा ! .. कहां गई आपकी शान, कहां गई आपकी आन ! .... देखा भगवान के दंड को, तू समझता है कि गांव की तमाम छोकरियों को मैं अपनी कामुकता का कलंक लगा दूं पर आज....।"

"भाई सा चुप रहिए ।"– ठाकुर सा चीख उठे ।

"चुप, क्यों रहूं मैं चुप, आज, आज तो मैं चीख चीख कर अपने अपमान का बदला लूंगा । तू ने मुझे बहुत कष्ट दिया था, मेरी जमींदारी, मेरी चंदा सबको तू ने छीन लिया था अब... अब सारे राजपूतों में तेरे पाप का भण्डाफोड़ कर तुम्हें तेरे पाप की वह सजा दिलाऊंगा कि.....।"

रेवतदान हैरान-सा ठाकुर को देख रहा था ।

"नहीं, नहीं, भाई सा, मुझे माफ कर दीजो,. .. मैं आपको सारे गांव वापस दे दूंगा पर आप यह बात....।"–कहते कहते ठाकुर सा नारायण सिंह के चरणों में पड़ गये ।

उनके चरणों पर अपने सिरको पटक-पटक कर ठाकुर सा कहने लगे – "आप पेरे पिता के समान हैं, आप मुझे माफ कर दीजिये, भाई सा,...।" कहते कहते ठाकुर सा ने नारायण सिंह की ओर देखा । नारायण सिंह का हृदय और रोष से गुर्रा उठा–"तू मेरा भाई है, नीच, कमीने, तुम्हें शर्म नहीं

आती यह कहते हुए। मैं ऐसे भाई को जलते तेल की कड़ाई में भुनवा दूं। तू ने वह पाप किया है...।"

"बस भाई सा, बस....! मैं आपकी गाय हूं।"

"चुप !"—नारायण सिंह ने अपने कान और आंखें बंद कर ली। जैसे वह 'गाय' शब्द को सुनना ही नहीं चाहता। उसके आंखें बंद करते ही ठाकुर सा ने झपट कर पूरे जोर के साथ एक मुक्का नारायण सिंह के पोतालो० पर दे मारा।

"आह !"— एक चीख के साथ नारायण सिंह गिर पड़ा। वह संभले, इसके पहले ही ठाकुर सा ने उसकी तलवार से उसका काम तमाम कर दिया।

रेवतदान किंकर्त्तव्य विमूढ़-सा इस नाटक सदृश दृश्य को देखता रहा।

और ठाकुर सा ?

हाथ में तलवार लिये खड़े थे।

उनकी आकृति बड़ी भयंकर थी।

"पापी !

नीच !!

कमीने !!!"— ये तीनों शब्द उनके कानों के पर्दे फाड़ने लगे। उन्होंने तलवार फेंक दी। बिजली सा एक विचार उनके सारे कमरे में गूंज पड़ा— "तू कितना नीच है, कि तू ने अपनी बेटी से.....? तू अपनी बेटी का पति बना... बेटी का पति...! उससे....!"

बेटी का पति !...

बेटी का पति !!...

बेटी का पति !!!...

---

० अण्डकोश।

यह शब्द चारों ओर से अट्टहास के साथ गूंज उठे। ठाकुर सा पुनः चीख उठे–"चुप हो जाओ, चुप हो जाओ,... मैं कहता हूं चुप हो जाओ।" –उन्होंने तलवार फेंक कर अपने कान बन्द कर लिये।

हठात् उनकी दृष्टि रेवतदान पर पड़ी। उसे देखते ही ठाकुर सा का खून खौल उठा। नसें तन गईं। सहसा एक विचार उनके मस्तिष्क में उठा– "यह जिन्दा रहेगा तो सारी दुनिया जान जायेगी कि मैंने अपनी बेटी से....! और तब सब कहेंगे–"यह छत्री नहीं, बेटी का पति है...।" देखते देखते ठाकुर सा के नेत्र लाल हो उठे। हाथ स्वतः ही तलवार की मूठ पर चला गया। वे रेवतदान की ओर लपके।

कानों में वे ही शब्द गूंज रहे थे।

बेटी का पति !

बेटी का पति !!

ठाकुर सा ने रेवतदान की ओर देखा उन्हें महसूस हुआ कि रेवतदान जोर का अट्टहास करके चीख रहा है–"तू बेटी का पति बाप है,पापी है, मिनख है, जिस पर पेशाब तक करने को जो नहीं चाहता।"– और वह पुनः हंसने लगता है।

ठाकुर सा जोर से चीख उठे–"चुप रह कमीने।"– और उस पर तलवार का वार कर दिया।

रेवतदान का लाल खून फर्श पर बिखर गया।

रात के काले अंधेरे में क्या हो रहा था, कोई नहीं जानता था।

दो हत्यायें हो गईं, लेकिन डेरे में सिवाय दो तीन चीखों के सुनने के कुछ भी सुनाई नहीं दिया और ये चीखें इतनी महत्वपूर्ण नहीं थी कि लोग इकट्ठे होकर उनकी जांच पड़ताल करते। ऐसी चीखें डेरे में प्रायः ही सुनाई पड़ती थीं।

ठाकुर सा ने पागल की भांति दोनों लाशों को देखा।

उनके बहते हुए खून में अपने हाथों को रंग कर इस बात का पता लगाया

कि यह सत्य है या स्वप्न। लेकिन जब उन्होंने अपने लाल हाथों को देखा तो उनकी आंखों में आंसू आ गये।

पाप के घात-प्रतिघात से उनकी दुर्बलताजन्य विकृतियां लुप्त होकर उस दानव के मानव को झकझोरने लगीं। वे पत्थर की भांति निश्चल होकर सोचने लगे–"मैं कितना पापी हूं, मैंने ऐसा पाप किया कि जिसे कोई...।" और उनके कानों में पहली ठकुराइन की चीखें, वे व्यथा भरी चीखें, आग सी जलती हुई चीखें, ठाकुर सा के कर्णकुहरों द्वारा आत्मा की गहराइयों में डूब कर कांटों सी चुभने लगीं। वे तड़प उठे। उन्होंने घूम कर देखा तो प्रतीत हुआ दीवारों पर ठकुराइन तारा के चेहरे चीख-चीख कर उन्हें दुत्कार रहे हैं– देखो अपना पाप,...देखा भगवान का दंड,... आज आपने अपनी ही जाई बेटी के साथ...!

ठाकुर सा ने वहां से दृष्टि हटाकर फर्श की ओर ताका फर्श पर लहू-लुहान लाशें मानों अट्टहास कर उठी–"गांव की छोरियों के जोबन के साथ खेलना तो आपकी आन है, शान है, खेलिये न, रधिया से, यह भी नयी है,...।"

ठाकुर सा ने निरीह मनुष्य की भांति समीप पड़े बिस्तरे की ओर देखा उन्हें ध्यान आया कि इस पर थोड़ी देर पहले रधिया नई दुल्हिन की भांति सजधज कर बैठी थी और ठाकुर सा से कहा था–"घणी घणी खम्भा माई-बाप।"– यह सुनकर ठाकुर सा घायल सैनिक की भांति चीख उठे थे –"हम तेरे माई-बाप नहीं, हम तेरे अन्नदाता हैं, घरवाले हैं।"

"घरवाले !"

जैसे दीवारें एक साथ ठाकुर सा से पूछ बैठी हों–"घरवाले।"

ठाकुर सा विचलित हो उठे। वे दो खून से लथपथ लाशें, रधिया का बिस्तरा अपना पाप वे कुछ भी नहीं देख सके। उन्होंने झपट कर दिये को बुझा दिया। प्रभात होने को आतुर था,लेकिन अपने पाप की इस भयंकर प्रतिक्रिया रूपी आक्रमण को वे सह नहीं सके। उस गूंजते हुए कमरे

से बाहर आकर वे रधिया के कमरे की ओर लपके। उसके सामने जाने से पहले ठाकुर सा के मन ने उन्हें रोका–"किसके सामने जा रहा है जसवन्त ?.. वह रधिया है, तेरी अपनी बेटी और तूने उसको अपनी वासना का....? कौनसा मुंह लेकर उसके सामने जायेगा, किस मुंह से कहेगा–रधिया तू मेरी बेटी.....रुक जा, शर्म कर पतित, उसके सामने जाने के पहले चुल्लू भर पानी में डूब मर, डूब मर, अम्बल खाकर मो जा, तूं इतना पापी और अपराधी है जिसे कोई भी क्षमा नहीं कर सकता,....तेरा जीवित रहना इस पृथ्वी के लिये घातक है, भार के समान है। जा, अपना यह काला मुंह लेकर कहीं मर जा, मर जा, मर जा।"

और यह 'मर जा' शब्द ठाकुर सा के सिर पर भूत बनकर बोलने लगा।

वे भाग कर डेरे की छत पर आये।

"मर जा !" यह शब्द गुम्बज से आती हुई हवा ने कहा।

ठाकुर सा गुम्बज की ओर लपके।

"मर जा !" ये शब्द तारों ने कहा।

ठाकुर सा गुम्बज पर चढ़ गये।

"मर जा !" ये शब्द चांद की चांदनी ने कहा।

ठाकुर सा गुम्बज से झुके।

"मर जा, मर जा, मर जा।"– ये शब्द एक साथ संसार के कण-कण और अणु-अणु ने चीख-चीख कर कहा।

ठाकुर सा गुम्बज से कूद पड़े। उस गुम्बज से जिस गुम्बज से एक दिन उनकी पहली ठकुराइन रधिया की मां कूद कर मरी थी।

एक जोर का धमाका हुआ।

एक शांत होती हुई चीख निकली। ठाकुर सा मछली की भांति छट-पटाकर इस संसार से सदा के लिए चल बसे। नारायण सिंह के साथ आये मोहन ने देखा कि धमाके के साथ-साथ डेरे का दिया बुझ गया है।

उपसंहार

धमाका सुनकर लोग जमा हुए। ठाकुर सा को मरा देखकर वे लोग भागे। रधिया के कमरे की ओर लपके। देखा –"वह तो रो रही है।"

अणचा ने उसे डांटने के लिए मुंह खोलना ही चाहा कि लधिया ने आकर कहा–"बड़े ठाकुर सा भी उस कमरे में मरे पड़े हैं।"

"तो क्या बात है ?" अणचा ने हठात् पूछा।

मेघले ने कहा–"भाई-भाई को बैर था, लड़ मरे होंगे।"

रधिया गूंगी की भांति सब को निस्तब्ध बनी देखती रही।

तभी तीर की भांति वत्सला भीड़ को चीरती हुई आई, पूछा–"क्या बात है ?"

"ठाकुर सा...।"

"क्या हुआ उन्हें ?"

"वे हमें....।"

"कहाँ ?"

"चौक में !"

ठकुराइन वत्सला चौक की ओर भागी। ठाकुर सा की लाश से लिपट लिपट कर रोने लगी।

अणचा और हरिया उसे धैर्य बंधा रही थीं लेकिन ठकुराइन का स्वर करूणा से करुण होता जा रहा था।

लधिया रोता हुआ सोच रहा था–"त्रिया के खेलों को समझ जाना खेल नहीं है।"– और सबका रोदन एक साथ गूंज पड़ा।

प्रभात हो गया था।

तत्काल ही ऊंट उनके सगे-संबंधियों के यहां दौड़ाये गये।

सबको, जो यह दुखद समाचार लेकर रवाने हो रहे थे, इस बात की चेतावनी दी गयी थी कि पूछने पर वे इतना ही बताये कि संध्या को वे खा-पीकर सुख से सोये थे और इसके बाद उठे ही नहीं।

सारे गांव में इस हत्याकांड की सनसनीखेज खबर हवा की भांति फैल गयी ठाकुर सा के टुकड़खोरों के अलावा कोई भी हृदय से उनकी मृत्यु का दुख प्रकट नहीं कर रहा था। लेकिन एकत्रित सब होने लग गये थे। साहूकार छगन राम तो लट्टू से हौले कह रहा था–"देखी पाप की सजा, अरे ! मैं तो पहले से ही जानता था कि इस चण्डी के श्राप से ठाकुर सा का 'काल'० ही आयेगा।"

"साहूकार जी, ठाकुर क्या था पक्का पापी था। बहू को बहू, बेटी को बेटी नहीं समझता था।"– लट्टू ने भी धीरे से कहा।

"साहूकार जी ! मैंने कई बार अकेले में ठाकुर सा को समझाया था कि यह नारायण सिंह कभी भी हाथ पर हाथ रखे बैठा नहीं रह सकता; क्योंकि वह भी आपकी भांति खानदानी राजपूत है। चोट खाया हुआ नाग शांत बैठा रह सकता है ?"– चौधरी धमनीराम ने लट्टू और साहूकार के बीच बैठते हुए कहा –"पर मेरी कौन सुने ?"– चौंक कर धनीराम एकदम सावधान हो गये जैसे उन्होंने कोई भारी भूल कर दी है। अपनी भूल को सुधारते हुए वे बोले–"वैसे तो वे हमारी हर सलाह-वलाह पर ध्यान दिया करते थे लेकिन न जाने जब मैं नारायण सिंह की बात उठाता तो वे कान क्यों नहीं देते थे ?"

साहूकार ने उनकी हां में हां मिलाते हुए कहा–"चौधरी जी ! आप उनके आदमी जो थे।"

"इसमें कौन सी कहने की बात है ?.... था सो था ही, तुमलोगों को मालूम नहीं है, जब मुझे रधिया को पर्दायतण बनाने की खबर मिली तो

---

० मृत्यु।

मैंने ही उनको पहले पहल साहस बंधाया था–"कहा था–कौन सी ब्राह्मण की बेटी है जो उसकी इज्जत चली जायेगी, नाई की जाई ठहरी, आप पल्ला पकड़ लेंगे तो बेचारी का उद्धार हो जायगा, दोनों वक्त अच्छा खाना तो मिलता रहेगा ।"

"यह तो हमको मालूम ही नहीं था ।"– लट्टू ने कहा ।

"अरे तुम्हें मालूम भी क्या हो सकता है ? जितना मैंने नमक खाया है, उतना तूने आटा भी नहीं खाया । साहूकार जी से पूछो कि ठाकुर सा मुझे कितना मानते थे, क्यों साहूकार जी ?"– चौधरी जी ने अकड़ कर पूछा ।

"अपने बेटे से भी अधिक ।"–और मन ही मन छगन राम बोला– फलसे० तक ।"

"आज धर्मावतार जी अकाल× ही हमारे बीच से उठ गये ।"–कह कर धनीराम जी ने आंसू बहाने का प्रयत्न किया, लेकिन जब आंसू नहीं बहे तो यूं ही दुपट्टे से आंखों को पोंछ डाला ।

अणचा अपने आंखों को धोती के पल्ले से बांधती हुई धनीराम के पास आकर बोली–"चौधरी जी ! ठकुराइन का रोना तो एक पल के लिये नहीं रुकता, उनकी आंखों से तो गंगा-जमुना एक साथ बह रही हैं ।"

"कैसे न बहें, सती लुगाइयों के ये लक्षण होते हैं ।"– चौधरी जी इसे शास्त्र की बात समझ कर गंभीरता से बोले–"तुम लोग उन्हें धैर्य बंधाओ, मैं जाकर चौधराइन को भेज देता हूं ।"– कह कर चौधरी खिसक गये ।

दस-पांच नीची जातिवाले व्यक्ति रेवतदान की लाश को जलाने की व्यवस्था कर रहे थे । उन्होंने लाश को संभाला और उसके रेवतदान के अपने घर के आंगन में लाकर सुलाने का कार्यक्रम बनाने लगे ।

और रधिया ?

०दरवाजा ×असमय ।

वह अधिक चीख कर नहीं रोई। एक-दो बार उसने अपने बाबा की लाश पर पड़कर चीखें अवश्य भरी थीं, लेकिन बाद में किसी ने उसे चीख कर रोते नहीं देखा, पर उसकी आंखों का अश्रुस्त्राव एक पल के लिए भी नहीं रुक रहा था।

जब रेवतदान की लाश ठाकुर के डेरे से हटाई जाने की योजना बनने लगी तो रधिया उसके पीछे जाने के बारे में सोंचने लगी। वह चुपचाप इस बात को जानने के लिए खड़ी रही कि कोई उसे आकर कुछ कहे, लेकिन किसी ने उसे कुछ भी नहीं कहा तो वह ठकुराइन की ओर लपकी।

इधर ठाकुर सा के दूर की फूफी का लड़का गणपत सिंह सर्वप्रथम ऊंट पर सवार होकर आ चुका था। उसके चेहरे पर गहरी उदासी छाई हुई थी।

गणपतसिंह को आंसू पोंछते हुए देखकर लधिया उनके समीप आया। अपने स्वर में गहरी आत्मीयता का समावेश करता हुआ गणपत सिंह को धैर्य बंधाने लगा—"ठाकुर सा ! अब रोने धोने से क्या होगा ? भाग्य में जो लिखा होता है, उसे कोई नहीं मिटा सकता।"

गणपत सिंह अपने जबरदस्ती से निकाले आंसुओं का प्रदर्शन करता हुआ बोला—"कैसे न हो, हमारे मामा सा के घर का तो दीया ही बुझ गया।"

"भगवान को यही स्वीकार था, बन्दा क्या कर सकता है ?"

"हां भाई, हां, उसके सामने किसी को भी कुछ नहीं चलती पर वे मुझे बहुत चाहते थे। आज से बीस दिन पहले उनकी चिट्ठी आई थी, उसमें लिखा था कि मैं तुम्हें नरेश जी के पास ले जाकर गांव का सारा प्रबंध सौंपने के लिये कहूंगा; क्योंकि अब मैं दिन-दिन दुर्बल ही होता जा रहा हूं। मृत्यु के निकट पहुंच रहा हूं।"

".....।" – लधिये ने स्वार्थ भरी बात को आगे बढ़ाना नहीं अच्छा समझा अतः वह चलता बना।

गणपत सिंह उसे जाते हुए देखकर, इस बात का प्रभाव जमाने के लिए कि उसके हृदय में ठाकुर सा के प्रति हार्दिक व्यथा है, जोर से सिसकियां भरने लगा।

ठकुराइन के पास रधिया आई। उसने देखा–ठकुराइन की आंखें रोते रोते लाल सूर्ख हो चुकी हैं। इस पर भी उनका रोना रुक नहीं रहा है। वे लगातार आंसू बहा रही हैं, घिग्घी एक पल के लिए भी नहीं थम रही है।

तब वह अपने प्रश्न को छोड़कर ठकुराइन को धैर्य बंधाती हुई कह उठी–"ठकुराइन सा ! अब आपही हार खा जायेंगी तो हम गरीबों का क्या हाल होगा ?"

".....।"– यह सुन कर ठकुराइन ने उसे घूर कर देखा जैसे उनकी दृष्टि की गति से पता चलता था कि वह कह रही हैं कि तुम्हें क्या पड़ी ? तू कौन होती है मुझे उपदेश देने वाली ?

लेकिन रधिया निरन्तर कहती ही जा रही थी –" हमारा और उनका साथ जितने दिन का था, उतने दिन निभ गया....।"

"चुप रह कुलक्षणी ! डेरे में पांव रखते ही सबको खा गई। न मालूम किस मुहूर्त में जन्मी थी।"– ठकुराइन बरस पड़ीं।

रधिया ठकुराइन द्वारा सहानुभूति की जगह फटकार पाकर चकित रह गई। अपनी आंखों में आंसू भरकर बोल उठी–"मैंने कौन सा कसूर किया ?"

"तू ने आते ही तो सारे खानदान को चौपट कर दिया, और फिर पूछती है कि मैंने कौन सा कसूर किया ?"

"किसी के मारे कोई मरने लगे तो यह सृष्टि कभी की खत्म हो जाती।" –रधिया ने सिसक कर कहा।

"तू ने बचा ही किसे रखा है ? सर्वनाश तो कर दिया।"

"मैं तो किसी को भी बना-बिगाड़ नहीं सकती।"– रधिया ने आंसुओं को पोंछते हुए धीमे स्वर में कहा।

"नहीं बिगाड़ सकती है, तो यहां बैठी क्यों है ? जा, अपना यह काला मुंह लेकर कहीं और चली जा, सांपिन कहीं की।"

"मैं कहां जाऊं ?"– रधिया ने प्रश्न किया।

अणचा बीच में ही तमतमा उठी–"जहां तुम्हें जगह मिल जाये, हमने कोई तेरा ठेका थोड़े ही ले रखा है।"

"लेकिन मैं तो ठाकुर सा की पर्दायतण,.... ।"

"सुन अणचा इस मालजादी की बातें, आई थी छाछ मांगने, बन बैठी घरकी धणियानी० । कौन से तुम्हें ठाकुर सा फेरें लगवा के लाये थे ?" –ठकुराइन की आंखों और स्वर में क्रोध की अधिकता थी ।

"तो....?"–रधिया की आंखें स्थिर हो गईं । पांव डगमगा कर कांप गये ।

" 'तो' और 'सो' नहीं चलेगा,...ठाकुर सा तेरे नाम पर कोई लिखा-पढ़ी+ कर जाते तो एक बात थी, वैसे तू यहीं रहना चाहे तो कोठरी मिल जायेगी, दो टुकड़े रोटी के मिल जायेंगे ।"– अणचा ने परामर्श दिया ।

ठकुराइन ने हुं, के साथ स्वीकृति दी ।

स्वीकृति देकर वह पुनः आंसू बहाती हुई कहने लगी–"ठाकुर सा ने किस घड़ी में इसपर अपनी दृष्टि डाली थी कि आज यह दिन देखने को मिला ?"

रधिया रोती रही ।

रोती रोती वह एकान्त में आ गई ।

इस एकाकी परिवर्त्तन के कारण वह अपने जीवन की जटिलता के बारे में कुछ सोंच नहीं पा रही थी ।

उसे तो ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे वह मंझधार की नैया है, जो न डूबती है और न किनारे लगती है । केवल भयंकर लहरों से टकराती है, थपेड़ों के प्रहार सहती है ।

वह पुनः आकर अपने बाबा की लाश के पास आकर बैठ गई । वह बैठकर जोर जोर से रोने लगी ।

उसका रोदन सबके हृदयों को भेद रहा था ।

साहूकार से उसका रोना नहीं देखा गया, आकर उसे धैर्य देने लगा ।

धीरे धीरे समय व्यतीत होता जा रहा था ।

दोपहर का समय हो गया ।

जो ऊंट दौड़ाये गये थे वे सवारों को लेकर पुनः लौट आये थे ।

इनमें तीन व्यक्ति थे–एक था ठकुराइन वत्सला का बाप मान-सिंह जी, जो चौधरी धनीराम की बाट जोह रहा था । धनीराम के आते ही उन्होंने पूछा –"चौधरी जी ! यह क्या मामला है ?"

---

० स्वामिनी, +बसियत ।

".....।"–चौधरी जी ने कहने के पहले अपनी रोनी सूरत बनाने की चेष्टा की। एक-दो बार आंखों को बन्द करके आंसू निकालने का प्रयत्न भी किया, लेकिन आंसू तो नहीं निकले पर आंखें तरल अवश्य हो गईं।

मानसिंह जी बोले–"हमने जब सुना तो विश्वास नहीं हुआ।"

"कैसे हो सकता है ठाकुर सा ?"– चौधरी जी ने दुख से कहा–"मैं कल सवेरे ही उनसे राम राम की थी और उन्होंने मुझसे हंस हंस कर इधने उधर की बातें की थी।"

"कैसी बातें ?"– मानसिंह जी ने पूछा।

"ठाकुर सा ! उनके तो केवल एक ही बात थी ?"– चौधरी जी ने सफेद झूठ बोला–"रैयत की चिन्ता।....कहने लगे कि चौधरी अब दिन-दिन ये हाथ-पांव उत्तर दे रहे हैं। मैंने कहा कि माई-बाप ! हाथ-पांव उत्तर दे आपके दुश्मनों के। भगवान आपको चिरायु रखें।"

"और किसी सगे-संबंधी के बारे में... ?"

"हां-हां !" चौधरी ने यहां भी झूठ इसलिये कहा कि उनका महत्व अधिक बढ़ जायेगा। इस वास्ते उन्होंने चारों खाने दृष्टि दौड़ाई। गणपत सिंह बस बोलने ही वाला था, लेकिन न जाने क्या सोंचकर चुप हो गया, पता नहीं।

ठाकुर सा के मौसी का लड़का भूपसिंह जो अभी बिल्कुल जवान था। जिसके चेहरे पर सौन्दर्य चमक रहा था, उसने अपनी ओर संकेत करके कहा–"चौधरी जी, उन्होंने तो मेरी चर्चा की ही होगी ?"

चौधरी जी ने ठोडी पर अंगुलियां फेरते हुए कहा–"आपका नाम क्या है सा ?"

"भूपसिंह !" चौधरी जी की ओर उत्सुकता से देखते हुए भूपसिंह ने तुरन्त उत्तर दिया।

"भूप सिंह !....हां, वे नाम तो ले रहे थे, कह रहे थे–जवान खासा तगड़ा है।"

"चौधरी जी, उनकी मेरे पर विशेष कृपा थी। आज से मैं एक माह पहले उनसे मिलने के लिये आया था तो उन्होंने यहां तक कहा था कि कुंवर भूपा, तू ही मेरे मन भाया है, मैं तो कहता हूं कि वे तो मुझे गोद लेने की सोच रहे थे।"

इस उक्ति पर मानसिंह जी ने कुछ कहने के लिए मुंह खोला ही था कि गणपत सिंह ने चौधरी जी को झकझोरते हुए याद दिलाया –"चौधरी जी ! मेरे बारे में कभी कोई चर्चा उठी, मेरा नाम गणपत सिंह है।"

"आपके बारे में ?"

"जी।"

"हां, याद आया, एक दिन उन्होंने चौपाल में ही आपकी तलवार-बाजी की तारीफ की थी।"

"उन्होंने मुझे चिट्ठी भी दी थी, शायद वे महाराजा सा से अपने दो सौ गांव पुनः मांग कर मुझे अपना सारा कार्यभार संभलाते।"

"यह आपने कैसे कह दिया ?" उनके नितान्त सन्निकट के जाति भाई ने पूछा इसका नाम प्रभु सिंह था। उम्र लगभग बीस की होगी। इनकी आंखें तरल थीं लेकिन जब इन्होंने सुना कि ठाकुर सा की धरोहर पर ये लोग आंखें गड़ाये बैठे हैं तो इससे न रहा गया। मृत्यु का विषाद भूलकर विवाद करने लगा–"जरा बताइये तो गणपत सिंह जी ?"

"क्योंकि उन्होंने मुझे चिट्ठी में लिखा था और वे मेरी तलवारबाजी पर फिदा थे।"

"लेकिन उन्होंने अपनी दो मूठवाली तलवार तो मुझे सौंपी है, देखिये यह तलवार ?"– इतना कह कर उन्होंने अपने ऊंट पर से वह तलवार लाकर बताई।

मानसिंह जी ने समझा कि यदि इस साधारण बात ने तूल पा ली तो झगड़े का रूप धारण कर लेगी तो उन्होंने यह समझाया कि अभी इस चर्चा को यहीं पर रोक दीजिये, पहले दाह-क्रिया का प्रबंध कर लीजिये।

"दाह क्रिया का प्रबंध होता ही रहेगा,लेकिन जिसका हक है वह तो उसे मिलना ही चाहिए।"–प्रभुसिंह ने दहाड़ कर कहा –"कौटुम्बिक धन और भूमि पर मामाओं तथा काकाओं का अधिकार नहीं रहता। उस पर तो अधिकार हमारा होना चाहिए क्योंकि हमारे परदादा और ठाकुर सा के परदादा सगे भाई–भाई थे।"

मानसिंह जी ने इस पर गर्ज कर कहा –"यह क्षत्रियों के लिए लज्जा की बात है, मुर्दा कभी पड़ा नहीं रह सकता, पहले-पहल ठाकुर सा की अर्थी निकाली जाय। ठाकुर सा की धरोहर जिसके भाग्य में होगी, उसे मिल जायेगी।"–मानसिंह जी ने इस बात को भगवान के भरोसे पर कर दी

और उन्होंने उन तीनों योद्धाओं की ओर देखा जो एक दूसरे को बुभुक्षित दृष्टि से देख रहे थे।

"ठाकुर सा मानसिंह जी, ...ठाकुर सा मानसिंह जी।"– हरिया ने दौड़कर भीड़ में प्रवेश किया।

सब एक दूसरे का मुंह ताकने लगे।

"क्या बात है ?"– मानसिंह जी ने पूछा।

"ठकुराइन सा पीले वस्त्र पहन कर मेहदी लगा रही हैं !"– हरिया ने शीघ्रता से कहा।

"क्या सती हो जायेंगी ?"– मानसिंह जी ने पूछा।

"हां, आसार तो ऐसे ही दीख रहे हैं।"

मानसिंह जी लपक कर ठकुराइन के समीप गये। देखा वास्तव में ठकुराइन सा पीले वस्त्र पहन कर हाथों में मेहदी लगा रही हैं। मांग में उसने सिन्दूर भर रखा है। पांवों में उसने घुंघरू की पायल पहन रखी है।

"बेटा ! यह क्या कर रही हो ?"

"अपने धर्म का पालन, मैं क्षत्राणी हूं,बिना पति यह जीवन निरर्थक है। बाबो सा मैं...।"

"पर जरा सोंचने की बात है, आपके बाद इन गांवों को कौन संभालेगा ?"– मानसिंह जी के स्वर में गंभीरता थी।

तभी बाहर से कर्कश स्वर सुनायी पड़ा–"गणपत सिंह जी ! जिसका अधिकार होगा, उसको मिलेगा।"

भूपसिंह जी ने इसका प्रतिरोध किया –"लेकिन प्रभुसिंह जी ! मैंने भी हाथों में चूड़ियां नहीं पहन रखी हैं, ठाकुर सा ! तलवार मुझे ही सौंप गये हैं।"

"देखा ! बाहर तो अभी से तलवारें निकलने लगी हैं।
–मानसिंह जी की पुतलियों में व्यथा उतर आयी।

"पर मैं अपना धर्म इनके लिये क्यों बिगाड़ूं ? –मेरे पीछे जो होता रहेगा, मैं नहीं जानती।"– ठकुराइन ने अपने पिता की ओर निहारा।

बाहर से प्रभुसिंह जी की आज्ञा पर चौधरी जी ने रधिया को दुत्कारा "तू आकर बीच में क्यों टांग अड़ाने लगी, जाकर अपने बाप की मिट्टी को सुधार, उसे जला।"

रधिया वहां से आकर इधर उधर इस तात्पर्य से देखने लगी कि चार आदमी हो जायें, तो वह अपने बाप को ले जाकर जला आये। उसने किरपे धोबी को पुकारा, रामूड़े माली को आवाज दी, रामूड़े के साथ उसका भतीजा, शंकर था, लेकिन अब एक आदमी की और आवश्यकता थी।

रधिया ने इधर उधर ताका। मदन सिंह को पुकारा तो उसने उपेक्षा से अपनी निगाहें घूमा ली।

रामूड़ा कह उठा—"वाह प्रभु, गरीबों की लाश भी क्या यूं ही सड़ेगी ?"

"नहीं।"—परिचित स्वर सुनाई दिया। रधिया ने चौंक कर विस्मय भरी दृष्टि से देखा—मोहन था।

मोहन ने उस अर्थी के चौथे कोने पर अपना कन्धा लगाते हुए गर्व से कहा—"अब गरीबों के शव नहीं सड़ सकते, वह जुग चला गया।"

और देखते देखते वे पांचों जने वहां से लाश लेकर रवाना हो गये।

० ० ० ०

संझा के नये दीये गांवों में नई आशा लेकर जल चुके थे। उन नये दीयों के आलोक में नया जीवन, नई जन शक्ति का सहारा लेकर सामन्तों के मिटते अवशेषों पर छाता जा रहा था।

रधिया और मोहन एक दूसरे का हाथ पकड़ कर गोचर भूमि की ओर बढ़ रहे थे।

रास्ते में ठाकुर सा की डेरे की ओर देखा।

वहां आतंक था।

प्रभुसिंह, भूपसिंह और गणपत सिंह की लहू-लुहान लाशें धूल में सनी पड़ी थीं।

कितना भयानक और वीभत्स दृश्य था ! खून से सनी धरती मानों अपनी विषाक्त बदबू से उन मरे हुए इन्सानों की क्रूरता की कहानी कह रही है और वह कहानी गांव के प्रत्येक घर की दीवारों,पेड़ों के सिरों और निकलते हुए चांद की माधुर्य और प्रेम से भीगी सौन्दर्यमयी चांदनी को पवन का रुप धारण करके चूम रही है।

मोहन और रधिया के कदम निरन्तर बढ़ रहे थे।

उन बढ़ते हुए कदमों में युग के आह्वान का घोष था, एक महान् परिवर्त्तन की ओर संकेत था जैसे अत्याचारों के खूंखार पंजों में दबोची जिन्दगी

मुस्करा उठी है, जैसे ऊमस में घुटती हुई मनुष्य की अभिलाषायें उन्मुक्त वातावरण में गुलाब के फूलों की भांति खिल उठी हैं।

मोहन ने अपनी सीमा पर पहुंच कर कहा–"जरा जल्दी करो न रधिया, देखो, वह रहा मेरा सूना घर।"

"कौन सा ?"

"वही टूटा-फूटा नीम के पेड़ के सामनेवाला, लेकिन रधिया अब तू मेरे साथ,मैं इसे शीघ्र ही नया बना लूंगा।"–मोहन के स्वर में विश्वास था। उस विश्वास की थाह लेने के लिये रधिया ने पूछा–"क्यों ?"

"मेरा मन कहता है।"

"तेरा मन तो पहले सा ही रहा।"–रधिया ने उलाहना कसा।

"और तेरा मन क्या बदल गया है ?"–मोहन ने पूछा।

"हां मोहन, पहलेवाला मन मेरा नहीं है, अब मैं तेरे सागे हूं, इसलिये मेरा मन नया मन है।"

"रधिया !"–मोहन ने उसे अपनी बाहों में भरना चाहा उसे रोकते हुए रधिया ने बताया–"रुको न जरा, सामने घर जो आ गया है।"

"जल्दी से बढ़ो।"–मोहन ने हाथ पकड़ा।

जिन्दगी पूरे जोश के साथ दौड़ पड़ी।

और दौड़ती ही जा रही है.....।

एक नया संदेश लिये।

एक नई रोशनी लिये।

ध्वंस के साथ नया निर्माण लिये।

—०—

यादवेन्द्रनाथ शर्मा 'चन्द्र' की आगामी कृतियां

रत्ती (उपन्यास) प्रेस में

सष्टि के खंडहर ,,

काला आदमी ,,

भगवान महाबीर ,,

नेहरू के बच्चे (कहानी संग्रह)

नवनीत (लघु कथाएं)